कुण्डलिनी साधना

लेखक–
परमहंस स्वामी अनन्त भारती
[महामहोपाध्याय डॉ० ब्रह्ममित्र अवस्थी]

स्वामी केशवानन्द योग संस्थान प्रकाशन
दिल्ली-११०००७

कुण्डलिनी साधना

S K.
Y I.

कुण्डलिनी–साधना
KUNDALINI-SHADHANA

कुण्डलिनी साधना

सम्पादक

परमहंस स्वामी अनन्तभारती

स्वामी केशवानन्द योग संस्थान,
दिल्ली-८५

समर्पण

योगिराज श्री १०८ स्वामी केशवानन्द जी महाराज,

जिनकी कृपा से योगविद्या परम्परा से प्राप्त
हो सकी एवं साधना में निरन्तर संरक्षण
प्राप्त हो रहा है, के करकमलों में
सादर समर्पित

प्रकाशकीय

प्राचीनकाल में योग साधना जन सामान्य के जीवन का अंग रही है। मध्यकाल में इसके प्रति उत्तरोत्तर उपेक्षा बढ़ती रही, और एक ऐसा समय आ गया जब इस विद्या को, साधना को, केवल साधु सन्यासियों के लिए मान लिया गया। किन्तु साधु सन्यासियों की प्रवृत्ति भी योग साधना की ओर न रहकर साम्प्रदायिक आचार के पालन और प्रचार में ही संकुचित होती गयी। फलतः योग के साधकों की संख्या क्रमशः घटती चली गयी। तथा जो कुछ सिद्धयोगी शेष थे उन्होंने समाज से दूर हिमालय की कन्दराओं में शरण ग्रहण कर ली।

इधर कुछ वर्षों से भौतिक साधनों के अम्बार के बीच भी असन्तुष्टि का अनुभव कर के कुछ लोगों का ध्यान योग साधना की ओर गया है, और लोगों में योग विद्या की प्राप्ति के लिए उत्सुकता बढ़ी है। किन्तु सामान्यतया सिद्ध योगियों के समाज से बहुत दूर चले जाने के कारण उत्सुकता में तृप्ति एवं जिज्ञासा का शमन सुलभ न हो सका है। कई प्रकार की भ्रान्तियां भी उत्पन्न होकर फैलने लगी हैं। कुण्डलिनी के स्वरूप और उसके जागरण के उपाय के सम्बन्ध में सन्देह और भ्रान्तियां सर्वाधिक उत्पन्न हुई और आज भी विद्यमान हैं।

योगिराज श्री १०८ स्वामी केशवानन्द जी के शिष्य (एवं गृहस्थाश्रम के उनके ही पुत्र) योगसाधक एवं योगविद्या तथा भारतीय दर्शन के अधिकारी विद्वान् महामहोपाध्याय डा० ब्रह्ममित्र अवस्थी ने इस विषय में परम्परा से जो बहुत कुछ प्राप्त किया है, प्राचीन योग साहित्य के साथ उसकी समीक्षा और परीक्षा की है, तथा साधना द्वारा साक्षात्कार भी किया है, उसे उन्होंने अपने शिष्यों के निवेदन पर कुछ थोड़ा बहुत स्वयं लिखा तथा कुछ दूसरे सिद्धयोगियों की लेखनी से प्रसूत विचारों का संकलन एवं सम्पादन करके उसे प्रकाशित करने हेतु हमें अवसर प्रदान किया है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकों के हाथों में कई मास पूर्व आ जाना चाहिए था किन्तु साधनों के सीमित होने के कारण हम इसे बहुत देर से आज पहुंचा पा रहे हैं, इसका हमें खेद है। किन्तु देर से ही सही प्रभु की कृपा से यह ग्रन्थ हम आपके हाथ में पहुंचाने में समर्थ हो सके हैं, इसकी हमें हार्दिक प्रसन्नता है। हमें विश्वास है, कि मनीषी साधकों में इस ग्रन्थ का स्वागत होगा।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन के प्रसंग में हम सिद्धयोगी स्वामी सत्यानन्द जी प्रभृति लेखकों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करना चाहते हैं, जिनके लेखों को इसमें संकलित किया गया है। साथ ही पंकज प्रिंटर्स के स्वामी श्री राजेन्द्र तिवारी एवं उनके सहयोगियों के भी हम आभारी हैं जिन्होंने इसे वर्तमान स्वरूप प्रदान करने में मनोयोग पूर्वक अपना श्रम प्रदान किया है।

गुरु पूर्णिमा सं० २०४५ वि० प्रभाकर अवस्थी

अनुक्रम

कुण्डलिनी जागरण क्यों और कैसे ?

—प० पा० स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

हिन्दू धर्म में एक ही सत्य को अनेक रूपों में समझाने के लिए रामलीला, कृष्णलीला शिवलीला एवं अनेक देवी-देवताओं की कहानियाँ बतलाई गई हैं। कहानी सच है या झूठ, इससे अपने को कोई मतलब नहीं। इस संबंध में चर्चा या विवाद करना बेकार है। राम हुए कि नहीं, कृष्ण हुए कि नहीं ये सारी बातें करना बन्द कर दो। मगर हाँ—राम, कृष्ण और शिव की जो लीला है, वह सच्ची है। सच पूछा जाय तो यह वैदिक धर्म का सारांश है। वेदों से लेकर के उपनिषद् और पुराणों तक हमारे ऋषि-मुनियों ने केवल एक बात कही है कि "मन के पीछे एक और शक्ति है, उसके पीछे एक और शक्ति है और उसके पीछ भी एक और शक्ति है"। जिस प्रकार विज्ञान में हम पदार्थ के पीछे तत्त्व को मानते हैं, तत्त्व के पीछे अणु को मानते हैं एवं अणु के पीछे परमाणु को मानते हैं। ठीक उसी प्रकार हमारे यहाँ शरीर, भावना, बुद्धि और अहंकार के भी परे कोई एक और शक्ति है। हमें केवल उसी को पाना है, बस। उसके अतिरिक्त जो कुछ भी है—वह इस जीवन का उद्देश्य नहीं है। तुम वेदान्त पढ़ो, दर्शन पढ़ो, कुछ भी पढ़ो। तुम पत्थर पूजो, पार्थिव पूजो, मन्दिर में जाओ, न जाओ, व्रत करो, उपवास करो, धोती पहनो, जनेऊ पहनो,—हमें उससे कोई मतलब नहीं। हमारा मतलब केवल एक को पाने से है। उसे पाया त तुमने योग पा लिया, बाकी सब भोग हैं।

संसार में आज तक उस तत्त्व को कोई-कोई बिरला ही पाया है, और जिन्होंने उसे पाया, उन्होंने यह पता लगाया कि इस अव्यक्त सत्य को सब कोई पास सकते हैं अथवा नहीं। अरे भई ! साधु पा सकते है, ब्रह्मचारी पा सकते हैं, यह बात समझ में आती है। मगर संसार में उलझा हुआ आदमी, बाल-बच्चों में उलझा आदमी, दुःख-सुख में उलझा हुआ आदमी, शादी-ब्याह में उलझा आदमी उसे पा सकता है या नहीं ? यही जानने का विषय हैं। उन्होंने इस पर काफी अनुसंधान किया और अन्त में पाया कि इस सत्य को सभी पा सकते हैं। सभी इसका साक्षात्कार कर सकते हैं। जो प्रयास करेगा, वह पहुँचेगा और जो खोजेगा, वह पाएगा। मगर हाँ, जरा कठिन है। उन लोगों के लिए जो संसार में उलझे हुए हैं, जो दुःख-सुख में उलझे हुए हैं, रुपये-पैसे में उलझे हुए हैं, काम, क्रोध, लोभ और मोह में उलझे हुए हैं, उनको कठिनाई है। और जो यह सब छोड़ करके एकान्त में बसते हैं, जंगल में बसते हैं, उनको भी कठिनाई है। एक को बाहर की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और दूसरे को अन्दर की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऐसा मत समझना कि बाबाजी लोगों को कोई कठिनाई हैं ही नहीं। चाहे वह साधु-संन्यासी हो अथवा साधारण गृहस्थ, द्वन्द्व सबके जीवन में है। द्वन्द्व दो प्रकार का होता है—एक अन्तर्द्वन्द्व और दूसरा बहिर्द्वन्द्व। आज तुम लोगों को बाहर की कठिनाई है। कल यदि साधु-सन्यासी बनोगे तो अन्दर की कठिनाइयों से लड़ना पड़ेगा। इसलिए यदि उस

शक्ति का साक्षात्कार करना है, तो निर्द्वन्द्व होकर योग का अभ्यास करना होगा। यही उन महापुरुषों की वाणी है और इसी चीज को समझाने के लिए अनेक शास्त्र-पुराण, कथाएँ और उपदेश लिखे गये हैं। वही रामायण में है, वही भागवत में हैं और वही राम-कृष्ण और शंकर की लीला है। दुबारा पढ़ोगे तो समझ लेना। बात अलग-अलग ढंग से कही गई है, मगर है एक ही चीज।

शंकर जी पार्वती से विवाह करने के लिए हिमालय पर जाते हैं। उनके साथ भूत-प्रेत और पिशाचों की जमात है। उनके शरीर पर अनेक विषधर सर्प लटक रहे हैं। वे बैल पर सवार होकर मस्ती के साथ जा रहे हैं—पार्वती से विवाह करने। जानते हो यह क्या है? यह कुण्डलिनी योग का विषय है। कुण्डलिनी योग में यही होता है। शरीर में रीढ़ की हड्डी में सबसे नीचे—पुरुषों में मल-मूत्र-द्वार के बीच पेरेनियम में और स्त्रियों में गर्भाशय के मुख के नीचे, जिसको सर्विक्स कहते हैं—वहाँ पर एक छोटी सी ग्रंथि है। यह बिल्कुल शारीरिक है। इसको काटा जा सकता है और इसको तौला भी जा सकता है, परन्तु यह अत्यन्त विलक्षण चीज है। यही उस अनन्त शक्ति का स्थान है जिसे हम कुण्डलिनी के रूप में जानते हैं। यह शक्ति स्वरूपा है, पदार्थ रूपा नहीं है। यह शरीर पदार्थ है, इसको मैटर कहते हैं। और यह कुण्डलिनी शक्ति है, मातृस्वरूपा है, स्त्रीस्वरूपा है, योनिस्वरूपा है क्योंकि यह सम्पूर्ण क्रियाओं की जननी है। इसी प्रकार इस शरीर में एक दूसरी चीज भी है, मगर हम उसे कुण्डलिनी नहीं कहते। साधु-महात्मा अथवा तन्त्र भी उसे कुण्डलिनी ही कहते। उसे "शिव" "शंकर" अथवा "ज्योतिर्लिंग" कहते हैं। तो यह जो ज्योतिर्लिंग है, यह चेतना, शक्ति और पदार्थ ये तीनों अनादि हैं। बुरा नहीं मानना—यहाँ द्वैत, अद्वैत या सिद्धान्त की चर्चा नहीं हो रही है। यहाँ व्यावहारिक बात हो रही है।

दुनियाँ में तीन चीजें अनादि हैं; पदार्थ भी अनादि है। पदार्थ को पैदा करने वाला आज तक दुनियाँ में कोई नहीं हुआ। जब से है, तब से है। जब तक होगा, तब तक होगा। यह तो वृत्त है। वृत्त का आदि अन्त नहीं होता। कोई भी बिन्दु आदि हो सकता है और कोई भी बिन्दु अन्त हो सकता है। इसलिए यथार्थत: यह न आदि हुआ और न हीं अन्त। इसी प्रकार यह जगत् अनादि है, यह पदार्थ अनादि है, यह कुण्डलिनी शक्ति भी अनादि है और ये शिव भी अनादि हैं। शिव चेतना के प्रतीक हैं, जगत् पदार्थ का प्रतीक है, और कुण्डलिनी ऊर्जा शक्ति की प्रतीक है। ऊर्जा के अस्तित्व को मानना पड़ेगा। जैसे यह स्पीकर है, अगर इसमें ऊर्जा का प्रवाह नहीं होगा तो यह निरर्थक हो जाएगा। यह पदार्थ है मगर पदार्थ बोल नहीं रहा है। यहा भी ऊर्जा पदार्थ के माध्यम से बोल रही है। पदार्थ के बिना ऊर्जा बोल नहीं सकती। शक्ति पदार्थ के बिना प्रगट नहीं हो सकती और पदार्थ शक्ति के बिना सक्रिय नहीं हो सकता। आनन्द लहरी में भगवान शंकराचार्य ने प्रथम श्लोक में ही लिखा है—"शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।" शक्ति के बिना शिव चल नहीं सकता। इसलिए शक्ति को जगा करके सहस्रार में शिव के साथ मिलाना है और वह धीरे-धीरे जागती

है। उसका एक रास्ता है। जागरण के पश्चात् वह एक चक्र से दूसरे चक्र, दूसरे से तीसरे चक्र, तीसरे से चौथे चक्र, चौथे से पांचवें चक्र, पांचवें चक्र से छठे चक्र में आ जाती है। जिस प्रकार स्टेशन-स्टेशन में रेलगाड़ी रुकती हुई जाती है, उसी प्रकार कुण्डलिनी भी सभी चक्रों में रुकती हुई छठे चक्र के बाद सहस्रार में शिव के साथ मिल जाती है। इसी को योग कहते हैं। वैसे योग की अलग-अलग परिभाषाएँ हैं, मगर हम यहां योग और तन्त्र की व्यावहारिक परिभाषा बतला रहे हैं। जब शिव और शक्ति का मिलन होता हैं, ठीक उसी समय समाधि लगती है। गाँजा पीकर के समाधि नहीं लगती। जब तक शक्ति जगेगी नहीं और जब तक उसका शिव के साथ संयोग नहीं होगा, तब तक समाधि लग नहीं सकती, चाहे कितने भी उपाय क्यों न कर लो।

इस शक्ति को जागृत करने के लिए सबसे पहली चीज—शक्ति को ठोकर मारनी होगी। योग में शक्ति को ठोकर मारने के जो उपाय हैं उन्हें कहते हैं—क्रियाएँ। पहली क्रिया है—मूलबन्ध, दूसरी क्रिया है—वज्रोली, तीसरी क्रिया है—उड्डियान बन्ध, चौथी क्रिया हैं—जालंधर बन्ध, पाँचवी क्रिया है— शाम्भवी मुद्रा ओर छठी क्रिया है—प्राण संचालन। इस प्रकार अनेक क्रियाएँ हैं। हमारा मेरुदण्ड शक्ति को पहुँचाने का माध्यम है। यह तार क्या है? विद्युत् शक्ति को पहुँचाने का माध्यम है। इसी प्रकार रीढ़ की हड्डी मात्र हड्डी नहीं हैं। यह संवेदनाओं को, स्फुरण को, विद्युत् और शक्ति के प्रवाह को नीचे से निगेटिव प्रेशर दे करके ऊपर की ओर ले जाने का रास्ता है। यहाँ सुषुम्ना नाम की एक नाड़ी हैं। उस छोटी सी ग्रन्थि, जिसमें कुण्डलिनी सोई रहती है, वहाँ से यह सुषुम्ना चलती है और रीढ़ की हड्डी के मध्य भाग से होकर भ्रूमध्य के पीछे, आज्ञाचक्र पर खत्म हो जाती है। बीच में इसके चार विराम स्थान हैं, पहला स्टेशन है लिंगमूल के पीछे, जहाँ रीढ़ की हड्डी समाप्त होती है। दूसरा है नाभि के पीछे, तीसरा है हृदय के पीछे, और चौथा है कण्ठ के पीछे। जिनमें पहले स्टेशन का नाम है—स्वाधिष्ठान, दूसरे स्टेशन का नाम है—मणिपूर, तीसरे स्टेशन का नाम है—अनाहत और चौथे स्टेशन का नाम है—विशुद्धि। ये चार स्टेशन हैं। इनके मध्य से होकर सुषुम्ना नाड़ी गुजरती है। यह नाड़ी साधारण जीवों में, पशुओं में हमेशा सोई रहती है, परन्तु जो मनुष्य साधना करते हैं, जिनके माता-पिता योगियों का सत्संग करते हैं, अथवा जिनके माता-पिता उपवास, व्रत, नियम आदि का पालन करते हैं। उनमें यह बचपन से जागृत रहती है। जब तक सुषुम्ना जागृत नहीं होती, तब तक कुण्डलिनी को भी नहीं जगाना चाहिए। सड़क बनी नहीं और गाड़ी चला दी, कहाँ जाओगे, बोलो? सुषुम्ना जब तक जागृत नहीं होती, तब तक भूलोक से लेकर के स्वर्ग तक का रास्ता ही नहीं बनता।

ये दो लोक हैं। सबसे नीचे का लोक भूलोक हैं। उसको कहते हैं, मूलाधार चक्र और जो सहस्रार चक्र है वह स्वर्गलोक है। उन दोनों के बीच में एक रास्ता है। उसको कहते हैं—देवयान। उसी से होकर के यह शक्ति जाती है।

दो पदार्थों के बीच परस्पर जब घर्षण होता है, तब विद्युत् शक्ति पैदा होती है।

यह विद्युत् शक्ति दो प्रकार की होती है—एक भौतिक, जिसे आप देखते हैं और दूसरी आध्यात्मिक, जिसे इन आँखों से देखा नहीं जा सकता। देखो, बल्ब, जल रहा है क्योंकि अभी विद्युत् शक्ति चल रही है। इसके बन्द होते ही बल्ब बुझ जाएगा और किसी को कुछ भी दिखाई नहीं देगा। इसी प्रकार जब अन्दर की बिजली जल जाती है तो अन्दर में रोशनी होने लगती है, और तब आँख बन्द करने के बाद सब कुछ दिखाई देने लगता है। यही अन्तर्ज्योति है। इसी को जगाना है और यही हमारा प्रयोजन है। अब इस शक्ति के जागरण के लिए क्या-क्या करना है, यह थोड़ा सा आप लोगों को बतलाता हूँ। मगर कल सबेरे से शुरू नहीं कर देना। गुरु पहले खोजना और तब इस ओर प्रवृत्त होना। इसको जगाने की एक पद्धति है। इसमें सर्वप्रथम चक्रों को, फिर सुषुम्ना को और उसके पश्चात् कुण्डलिनी को जागृत किया जाता है।

चक्र छः होते हैं—१. मूलाधार, २. स्वाधिष्ठान, ३. मणिपूर, ४. अनाहत, ५. विशुद्धि, ६. आज्ञा। इन छः चक्रों को जगाये बिना काम नहीं चलता। वैसे बहुतों में ये जगे भी होते हैं और कई लोगों में साधना करते-करते जगते हैं। कभी-कभी तुमको ध्यान अथवा पूजा-पाठ के अवसर पर कुछ अनुभव होता है, कुछ दिखाई देता है, कुछ रोशनी मिलती है, कुछ आवाज सुनाई देती है। ये सब चक्रों के जागने के लक्षण हैं। इन चक्रों को जगाने के लिए, आसनों का अभ्यास नितान्त आवश्यक है। बीमारी के लिए तो करो, फायदा होगा ही, मगर यह प्रयोजन नहीं है। आसनों के अभ्यास का मुख्य प्रयोजन है—चक्रों का जगारण। भुजंगासन से मणिपूर चक्र जागता है। सर्वांगासन से विशुद्धि चक्र जागता है। इसी प्रकार और भी अनेक आसन हैं. जिनसे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, अनाहत और आज्ञाचक्र जाग्रते हैं।

एक बार हमारे मुंगेर में आश्रम में बिजली बन्द होगई। हमने कहा—पूरे मुंगेर में बिजली है, मगर हमारे यहाँ क्यों नहीं है? लाइनमैन को बुलाया गया। उसने कहा "स्वामी जी, वहाँ तार के कनेक्शन में कार्बन जम गया है"। बिजली है मगर हमारे आश्रम में नहीं आई, क्योंकि कनेक्शन में कार्बन जम गया था। तो हमने पूछा—"क्या करना चाहिये?" उसने कहा—"स्वामीजी, एल्यूमिनियम का तार है। इसको निकाल दीजिये, क्योंकि जब-जब पानी गिरता है, इसमें कार्बन जम जाता है। आप कॉपर वायर लगा दीजिये।" हमारी भी ठीक यही हालत है। इन सभी चक्रों में कार्बन जमा हुआ है। क्यों? जानते हो? क्योंकि माल थर्ड क्लास का है। हमारे निर्माता ठीक माल पैदा नहीं कर रहे हैं। ये जो माल पैदा कर रहे हैं, ये सब निम्न क्वालिटी के माल हैं। देखो भाई, बुरा नहीं मानना, हम ठीक बोल रहे हैं। ये सारे निर्माता गलत माल बना रहे हैं। जिस प्रकार पानी गिरने पर एल्यूमिनियम के तार में कार्बन जम जाता है, उसी प्रकार छोटी-छोटी चिन्ताओं से हमारे चक्रों पर भी कार्बन जम जाता है। चिन्ता तो होती ही है, गुस्सा भी आता है, ईर्ष्या भी होती है, बेटी मोटी है, शादी नहीं होती, नौकरी बनती-बिगड़ती है, किसी को रोटी और कपड़े की चिन्ता है। इस प्रकार सोचते-सोचते

चक्रों पर कार्बन जमता जाता है और एक दिन वे बिल्कुल जाम हो जाते हैं। कार्बन जमे हुए चक्रों को साफ करने के लिए सबसे पहला साधन है—आसन।

हमने अपने गुरुजी से एक दिन पूछा। हमने कहा—"गुरुजी आप कहते हैं इस आसन से यह बीमारी दूर होती है, इस आसन से वह बीमारी दूर होती है, क्या यह सच है।" बोले हाँ, ठीक बात है। हमारे गुरु स्वामी शिवानन्द जी बहुत बड़े डॉक्टर थे। बड़े उच्च कोटि के सर्जन थे। उन्होंने कहा—"आसन से रोग तो दूर होते ही हैं, मगर आसनों से मुख्यत: चक्र जागृत होते हैं।" इन्हें क्यों जागृत करना चाहिये ? क्योंकि इन चक्रों से होकर के हाई टेंशन लाइन जाती है। उसके लिए सुषुम्ना वाली लाइन चाहिये। इड़ा-पिंगला हाईटेंशन वाली लाईन नहीं हैं। इसलिए अगर कहीं उनमें ११००० वोल्ट वाली धार बह गई, तो मामला गड़बड़ हो जायेगा। अरे, हनुमान जी जैसे को समस्या हो गई, आप तो आप हैं। हनुमान जी बड़ी समस्या में पड़ गये। उनकी शक्ति पिंगला नाड़ी में चली गई। तब क्या हुआ जानते हो न ? "तब तीनहुँ लोक भयो अंधियारो"। तब तीनों लोकों में अंधकार छा गया। कहते हैं—एक बार हनुमान जी को बहुत भूख लगी। नाश्ते का समय था। देखा सुबह का सूरज सेब की तरह बड़ा अच्छा लग रहा है। उन्होंने उसे खा लिया। भले आदमी, सोचो तो सही इसका मतलब क्या होता है।

सूर्य नाड़ी पिंगला को कहते हैं और चन्द्र नाड़ी इड़ा को। हनुमान् जी साधारण व्यक्ति नहीं थे, योगी थे। उनका नाम ही था हनुमान्। जो जालन्धर बंध लगावे, उसको कहते हैं हनुमान्। हम लोगों के यहाँ जालन्धर बंध का मतलब होता है, हनुबंध। हनु कहते हैं, ठुड्डी को। तो जब उनकी शक्ति पिंगला नाड़ी में प्रवाहित होने लगी, उस वक्त में "तीनहुँ लोक भयो अंधियारो" अर्थात् उनकी तीनों चेतनाएँ समाप्त हो गईं। इसलिए पहले चक्रों को जगाना, ताकि चक्रों के बीच कोई अवरोध न रहे। मूलाधार से लेकर आज्ञाचक्र तक सुषुम्ना नाड़ी का रास्ता बिल्कुल साफ रहना चाहिए, अन्यथा बड़े जोर से धक्का लगता है।

इसके अलावा चक्रों को जगाने में मंत्र भी कार्य करते हैं। मंत्र किसी देवी देवता के नाम नहीं हैं। ये अनन्त शक्ति के पुंज हैं। इसमें प्रचण्ड ऊर्जा छिपी हुई है। मंत्र शब्द ब्रह्म हैं। इसलिए इन्हें बच्चों का खेल नहीं समझना चाहिए। सर्वप्रथम किसी गुरु से दीक्षित होकर मंत्र प्राप्त करें। उसके पश्चात् उसे माला, मन या श्वास में जपें। जब इस प्रकार आप अभ्यस्त हो जायें तब प्रत्येक चक्र में उसका जप करें। उदाहरणार्थ— मूलाधार में १०० बार, स्वाधिष्ठान में २०० बार, और मणिपूर में ३०० बार, अनाहत में ४०० बार, विशुद्धि में ५०० बार और आज्ञा में ६०० बार। इससे चक्रों का जागरण, परिशोधन एवं सुषुम्ना का मार्ग निर्मल होगा।

अब सुषुम्ना के जागरण के लिए उपाय बतलाते हैं : प्राणायाम के अलावा सुषुम्ना को जगाने का और कोई अच्छा तरीका नहीं है। प्राणायाम सुषुम्ना को जगाने का बहुत ही सरल साधन है। प्राणायाम अर्थात् श्वास-प्रश्वास की गति का विच्छेद। राजयोग

सूत्र में महर्षि पतंजलि ने श्वास और प्रश्वास के बीच में जो विराम हैं, जो विच्छेद उसको प्राणायाम कहा है—"श्वास-प्रश्वासयोः गतिच्छेदः प्राणायाम."। श्वास और प्रश्वास के बीच जो अन्तर है, जब तक तुम उसको रोक सकते हो,—वही प्राणायाम है। इसको कहते हैं कुम्भक। इसके तीन तरीके हैं। श्वास रोको और मूलबन्ध लगाओ, यह हुआ पहला तरीका। दूसरा तरीका है—जालन्धर बन्ध के साथ कुम्भक और श्वास रोकने का तीसरा तरीका है—फेफड़ों को बिल्कुल खाली कर उड्डियान बंध लगाना। ये तीन तरीके हैं। श्वास को अन्दर रोको, बाहर रोको और तीन बन्ध लगाओ। इससे सुषुम्ना जागती है। एक सन्त ने लिखा है कि जब सुषुम्ना का जागरण होता है, तब कमल की नाल में सूर्य का प्रकाश दिखाई देता है। रीढ़ की हड्डी को कमल की नाल कहते हैं। इसके अन्दर सूर्य का प्रकाश उत्पन्न होता है। ध्यान की अवस्था में अथवा प्राणायाम करते हुए जब आपको रीढ़ की हड्डी में प्रकाश का अनुभव हो तब समझना सुषुम्ना जागृत हो रही है और जब यह सुषुम्ना जागृत हो तब कुण्डलिनी को जगाने के लिए प्रयत्न करना।

कुण्डलिनी जागरण कई प्रकार से होता है। किसी-किसी में कुण्डलिनी जन्म से जागी रहती है और ऐसे बच्चे आगे चलकर महान योगी बनते हैं। दूसरा—मंत्र से कुण्डलिनी जागती है, तीसरा—तपस्या से कुण्डलिनी जागती है, चौथा—क्रियायोग से कुण्डलिनी जागती है, पांचवां—तन्त्र शास्त्र में जो पंचमकार की साधनाएँ हैं, उनसे। छठा—औषधि से। सातवां—गुरु कृपा से और आठवां—राजयोग के साधन से भी कुण्डलिनी जागती है। अतः कुण्डलिनी को जागृत करने के जितने भी उपाय हैं, सबका अध्ययन और क्रमिक अभ्यास करो। तब जा करके यह कुण्डलिनी जागृत होगी कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने के बाद मनुष्य में सृजनात्मक शक्ति उत्पन्न होती है, उसी शक्ति को लोग भगवत् शक्ति कहते हैं, जिसकी कृपा से—"बहिरो सुनै मूक पुनि बोले रंक चले सिर छत्र धराई"। उसकी कृपा बिलक्षण है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को निश्चित रूप से उसे जगाने का प्रयास करना चाहिए।

कुण्डलिनी योग

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आज का समय विश्व के आध्यात्मिक संक्रमण का काल है। दुनिया के सभी लोग आज एक चौराहे पर खड़े हैं। एक दर्शन ने दूसरे दर्शन को चुनौती दी है, एक धर्म ने दूसरे धर्म को चुनौती दी है, एक विज्ञान ने दूसरे विज्ञान को चुनौती दी है। लोग आज जानना चाहते हैं कि हमें किस ओर जाना है, कहाँ जाना है। ऐसी स्थिति में योग उन्हें एक समग्र मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है। वे इसके उत्तम मार्गदर्शन से जीवन के असीम आनन्दपूर्ण स्थान की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

योग न केवल आध्यात्मिक विज्ञान है, बल्कि यह एक आध्यात्मिक संस्कृति भी है। इस संस्कृति का उद्‌गम स्थान है भारत। यहां के प्राचीन ऋषि-मुनियों ने इस संस्कृति का निर्माण अत्यन्त सोच-विचार कर किया था। उन्होंने न केवल बौद्धिक तथ्यों से प्रभावित होकर इस विद्या का अनुसंधान किया था, बल्कि उन्होंने आत्मज्ञान के द्वारा भलीभाँति इसको समझ कर तत्कालीन समाज के सामने इसका एक अद्‌भुत रूप प्रस्तुत किया था। समाज के सर्वांगीण विकास के संदर्भ में उन्होंने इसकी महत्ता को प्रत्यक्ष रूप से लोगों को समझाया था। मगर हम थे कि उसको भूलते ही जा रहे थे। हमें अपने कर्तव्यों का तनिक भी ज्ञान नहीं रहा और हुआ यह कि हम पूर्ण रूप से इसे भूल गये और अभी तक भूले ही हैं।

तब योग का संबंध संन्यास से लगाया गया। त्याग और चमत्कार से लगाया गया। टोना, जादू और मंत्र से लगाया गया। योग का संबंध उस जीवन पद्धति से लगाया गया, उस आयाम से लगाया गया, जिसका वास्तविकता से कोई संबंध नहीं, समझदारी से कोई मतलब नहीं। इसीलिए हमारे यहाँ की जनता योग से वंचित हो गयी और लोगों को इसके नाम से डर लगने लगा। अभी भी हम अपनी उस गलती को सुधारने का प्रयास नहीं कर रहे हैं। हमारे मन में शंका बनी हुई है कि योग कहीं हमें घर-द्वार छोड़ने को मजबूर न कर दे, कहीं हमें संन्यासी न बना दे।

मैं मानता हूँ—भू-समाधि लेना अत्यन्त कठिन है, नाइट्रिक एसिड पीना कम खतरनाक नहीं है। मगर मैं यह नहीं मानता कि यह असंभव है। यह मैं कर सकता हूँ और आप भी कर सकते हैं। मैं भू-समाधि लगा सकता हूँ, नाइट्रिक एसिड पी सकता हूँ और आप भी इन क्रियाओं को भलीभांति कर सकते हैं, परन्तु इससे हमें अपने जीवन के पक्ष में क्या मिलेगा ? कुछ भी तो मिलने का नहीं। इसलिए यह हमारे लिए कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं है। हमें इस प्रकार के चमत्कारों की ओर नहीं बढ़ना है; हमें बढ़ना है उस ओर जहाँ जीवन की वास्तविकता के रहस्य छिपे हैं, जहाँ जीवन के चरमोत्कर्ष के साधन मौजूद हैं और जहाँ मनुष्य की

शारीरिक मानसिक एवं दैनिक जीवन की समस्याओं के समाधान पूर्ण रूप से विद्यमान हैं । और यह सब योग के अन्दर अत्यधिक मात्रा में छिपे हुए हैं । बस, हमें अपने जीवन में उसे केवल उतारने भर की देरी है। जिस दिन हम योग को अपने दैनिक व व्यावहारिक जीवन में स्थान दे देंगे उस दिन से समझ लीजिए हम समस्याओं, तनावों और सदियों से चली आ रही सांसारिक उलझनों की शृंखला से मुक्त हो जायेंगे ।

हमें निश्चित रूप से उन विद्वान् वैज्ञानिकों और डॉक्टरों का आभार प्रदर्शन करना होगा जिन्होंने भारत से बाहर, भारतीय मर्यादा से कोसों दूर रहने वाले, भारत की सनातन परम्परा से सर्वथा अनभिज्ञ होने के बावजूद भी यह संकेत दिया कि—'योग साधारण से साधारण और महान् से महान् व्यक्तियों के लिए हैं। जिन्होंने अपने धर्म और अपनी मर्यादाओं को तोड़कर, अपने मजहब और अपनी प्राचीन मान्यताओं की परिधि से बाहर आकर कहा—योग मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। उदाहरणार्थ—शाम का समय था। एक लड़का अपनी साइकिल पर बड़ी तेजी से जा रहा था चौराहे पर एक सिपाही ने उसको देखा और हाथ देकर कहा—ऐ लड़के, साइकिल रोको तुम्हारी साइकिल में बत्ती नहीं है। तब जो लड़का साइकिल पर जा रहा था बोला—सिपाही जी, रास्ते से जल्दी हट जाइये मेरी साइकिल में ब्रेक भी नहीं हैं । ठीक इसी प्रकार जिसके जीवन में संयम नहीं, जिसके जीवन में प्रकाश न हो योग उसके लिए एक आवश्यक एवं अनिवार्य वस्तु है । जिसका जीवन संतुलित हो गया है, जो अपने मन वचन कर्म एवं विचारों को संतुलित कर लिए हैं वे तो स्वयं योग-सिद्ध हैं । उनके लिए योग करने की क्या आवश्यकता है ? मगर जिन्होंने सांसारिक वासनाओं के अतिशय उपभोग से अपने शरीर को जर्जर कर दिया है, जो अपने मन से उठने वाली भावनाओं और उद्वेगों को संभाल नहीं पा रहे हैं, जिनमें संघर्ष-शक्ति का पूर्णतः अभाव हो चुका है योग उनके लिए है। ऐसा मैं मानता हूँ ।

मैं गुरुजनों का विरोध करना नहीं चाहता और न ही मैं क्रान्तिकारी विचारक होने का दावा ही करता हूँ । मुझे अपनी प्राचीन संस्कृति पर पूरा विश्वास है। प्राचीन महामनीषियों के मुख से निकले प्रत्येक शब्द में मुझे सत्यता का असीम आभास मिलता है, मगर जहाँ तक मेरी मान्यता है, मैं मानता हूं कि जो अपनी आदतों से परेशान हैं, जो अपनी कमजोरियों और वासनाओं से परेशान हैं, जो अपनी सीमाओं और स्मृतियों में बंधे हुए हैं और उन्हें तोड़कर एक उन्मुक्त जीवन की ओर बढ़ना चाहते हैं, उनके लिए योग का अभ्यास निहायत जरूरी है । ऐसी स्थिति में हमें योग के सारे आयाम और सारी मान्यताओं को बदलना होगा। साथ ही उसकी एक नूतन परिभाषा भी बनानी होगी।

मैं एक समय विश्व यात्रा पर निकला यह देखने के लिए कि दुनिया में योग

के बारे में लोगों की क्या राय है । मैं जिस देश में भी जाता था, केवल यही सुनता था कि 'योग करो सुन्दर बनो'। तुम्हें अगर कमर पतली करनी है, पेट कम करना है तो योग करो—यह उसका मत था। इस प्रकार जब मैं योग की अयोग्य परिभाषा (योग फॉर ब्यूटी) सुनता था तो मुझे बड़ा बुरा लगता था। मगर मैं कुछ बोलता नहीं था और धीरे-धीरे मैं अपना यौगिक दृष्टिकोण उन लोगों के सामने रखता था। उसका परिणाम यह हुआ कि आज अगर योरप के किसी देश में जाकर आप कहें—योग फॉर ब्यूटी (योग सुन्दरता के लिए है) तो लोग हँसने लगते हैं और कहते हैं—योग सुन्दरता के लिए नहीं प्राणशक्ति को जागृत करने के लिए है। सारा अर्थ बदल गया, सारे सिद्धान्त बदल गये, सारे आदमी बदल गये। इसी प्रकार भारत में भी आज तक योग का जो अर्थ समझा जाता है, उसको भी बदलना होगा । आप शास्त्र का आधार लेकर इसको झुठला नहीं सकते । शास्त्र यह कभी नहीं कहता कि योग इसके लिए है, उसके लिए नहीं है । हम लोगों की यह आदत रही है कि हम जिसको जैसा सिद्ध करना चाहे किये, मगर अब योग को हम किस प्रकार लोगों के सामने रखें यह आज के युग का महत्त्वपूर्ण प्रश्न है।

हर युग की अपनी आवश्यकतायें हैं । आज के युग की आवश्यकता है अनुशासन। व्यक्तिगत जीवन में, राष्ट्रीय जीवन में, सामाजिक जीवन में, राजनैतिक जीवन में, भावनात्मक जीवन में अथवा आध्यात्मिक जीवन में आवश्यकता है अनुशासन की । जहाँ अनुशासन नहीं है वहाँ कुछ भी सफल नहीं हो सकता । और यही अनुशासन सिखाता है योग ।आप ध्यान करेंगे आपको अनुशासन की आवश्यकता है, क्योंकि यदि आपका मन, आपकी चित्त वृत्तियां ध्यान के समय चंचल रहेंगी आप ध्यान नहीं कर सकते । इसी प्रकार अपने सामाजिक जीवन में, राष्ट्रीय जीवन में अनुशासन की बहुत बड़ी आवश्यकता है । जहाँ अनुशासन नहीं वहाँ कुछ भी नहीं। इसलिए लोगों को अब योग की ओर उन्मुख करना होगा । क्योंकि योग ही एक ऐसा है जो व्यक्ति के अन्दर जाने अनजाने अनुशासनात्मक संस्कारों का उदय करता है ।

आज हमारी प्राणशक्तियाँ नष्ट हो गई हैं, हमारा मस्तिष्क फ्यूज हो गया है । क्यों ? क्योंकि हमने इसकी क्षमता का दुरुपयोग किया है। उदाहरणार्थ आप १० एम्पीयर की एक मशीन लगायेंगे और उसमें विद्युत शक्ति को सर्वत्र परिचालित करने के लिए पतले एवं सामान्य शक्ति वाले तार का उपयोग करेंगे तो तार जल जायेगा क्योंकि उसमें उतनी बिजली को संभालने की शक्ति नहीं है । इसलिए जब भी आप १०-२० एम्पीयर की कोई मशीन लगायें उसके मुताबिक विशिष्ट एवं मजबूत तार का भी प्रयोग करें, तब कहीं आप उस मशीन से समुचित लाभान्वित हो सकेंगे। ठीक इसी प्रकार आप जीवन की जिन-जिन समस्याओं से जूझ रहे हैं, उसके लिए

आपको हाई बोल्टेज की बिजली और हाई टेंशन के तार की जरूरत है। क्योंकि अभी आपका मस्तिष्क—स्नायु, हृदय, फेफड़े आदि के तनाव को बर्दाश्त कर सकने में असमर्थ है। जिस जर्जर एवं चरमराती हुई बैलगाड़ी पर आप अपने जीवन का बोझ लिये जा रहे हैं, वह अत्यन्त दयनीय अवस्था में है। उसकी मरम्मत करनी होगी। उसमें प्राणशक्ति भरनी होगी। तभी आप एक अच्छे गृहस्थ, अच्छे डाक्टर, अच्छे प्रोफेसर या अच्छे प्रिंसिपल बन सकते हैं और अपने व्यक्तिगत एवं भावनात्मक बोझ को खींच कर ले जा सकते हैं, नहीं तो आपका ब्रेक डाउन हो जायेगा। इसलिए आज सारी दुनिया में प्राण को शक्तिशाली बनाने के संदर्भ में अनेकों चर्चाएँ चल रही हैं।

यह प्राणशक्ति क्या है? इस प्राणशक्ति को किस प्रकार जागृत किया जाय और यदि प्राणशक्ति है तो इस शरीर में उसका मुख्यालय कहाँ है? उस प्राणशक्ति का शरीर, मन और चैतन्य पर क्या प्रभाव पड़ता है? इस प्रकार के अनेकों प्रश्न आज संसार में लोगों के मन में भरे पड़े हैं परन्तु इन शंकाओं का समाधान किसी के पास दृष्टिगोचर नहीं होता। क्यों? क्योंकि इसके मूल रहस्य—जो कि योग में छिपे हुए हैं, उनको किसी ने भी जानने की कोशिश नहीं की। अतः यदि हम इन प्रश्नों के उत्तर की अभिलाषा रखते हैं, तो हमें निश्चित रूप से एक योग के संबंध में जानकारी हासिल करनी होगी। इस योग का नाम है कुण्डलिनी योग।

एक समय था जब लोग कहा करते थे—अरे कुंडलिनी योग मत करो, दिमाग घूम जायेगा। सोचिये—लोगों का कैसा अच्छा मन्तव्य था। कुंडलिनी योग करोगे तो दिमाग घूम जायेगा और शराब पीओ, गाँजा पीओ, वेश्यालय में जाओ, सिनेमा घरों में जाओ तो? दिमाग नहीं घूमेगा! कैसी विचित्र फिलॉसफी है? मुझे यह अनोखा दर्शन कभी समझ में नहीं आया।

कुंडलिनी योग करने से दिमाग घूम जायेगा। अच्छा जी घूमने तो दो। अरे! दिमाग तो सबका घूमा हुआ है। सबका दिमाग पीछे की ओर है। क्यों है न? या कोई सामने देख रहा है? हम लोग सब पीछे देखा करते हैं—अतीत की ओर। मेरा बेटा मर गया, मेरा बाप मर गया, मेरी सम्पत्ति चली गई, मेरा घर बर्बाद हो गया, ये क्या हैं? उलटे दिमाग के द्योतक नहीं हैं क्या? अतीत की झाँकियाँ नहीं हैं क्या? ऐसी झाँकियाँ सबको दिखती हैं, आगे कोई नहीं देख रहा है। इसलिए अब ये सिद्धान्त छोड़ो कि कुंडलिनी योग से दिमाग घूम जायेगा' जब तुम्हें दिमाग को सही राह पर ले जाना है, जब तुम्हें आगे की ओर देखना है, जब तुम्हें अतीत को भूलना है तो तुम्हें कुंडलिनी योग को आज नहीं तो कल अपनाना ही होगा। अन्यथा तुम पीछे के पीछे ही रह जाओगे।

तंत्र में कुंडलिनी की विशेष महत्ता है। इसी कुंडलिनी को प्राचीन ऋषि-

महर्षियों ने देवी, दुर्गा, शक्ति आदि अनेकों नामों से व्यक्त किया है। वह शक्ति स्थूल भी है, सूक्ष्म भी और परात्पर भी। यह त्रिगुणात्मिकता भी है और तीनों गुणों से परे भी। इसे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति के रूप में भी माना जाता है। इस शक्ति को हम तीनों लोकों में देखते हैं। प्राण इस महान् शक्ति का एक अंग है। साधक लोग जब साधना करते हैं तो इसी प्राण के माध्यम से कुंडलिनी का जागरण करते हैं। प्राणशक्ति के बिना आध्यात्मिक अथवा कुंडलिनी शक्ति का जागरण नहीं होता। ये प्राण कुंडलिनी-जागरण के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। जिस प्रकार डेटोमिटर के बिना बम को नहीं फोड़ा जा सकता, चाहे तुम जमीन में कितना भी पटको। उसी प्रकार प्राण के बिना आध्यात्मिक विस्फोट नहीं होता।

एक बार मुझसे स्वामी अमृतानन्द ने पूछा—स्वामीजी, यह अणु बम क्या है ? मैंने कहा—अणु बम एक अत्यन्त शक्तिशाली विस्फोटक है। जिसके विस्फोट होने पर बहुत बड़े पैमाने पर भू-भाग को तोड़ा जा सकता है। यह अणु बम जहाँ बहुत बड़ा विध्वंसक है, वहाँ इसके द्वारा अनेकों असाध्य कार्य भी साध्य किये जा सकते हैं। मगर इसको तुम जमीन में पटक कर फोड़ना चाहो तो फूटेगा नहीं। इसी प्रकार प्राणों के माध्यम से कुंडलिनी शक्ति का जागरण करके मनुष्य अपने में अनेकों शक्तियों के विस्फोट का अनुभव कर सकता है और यही योग अथवा तंत्र-साधना का उद्देश्य भी है।

प्राणशक्ति को जागृत करने की बात सदियों से चली आ रही है और अब भी इसके संबंध में चर्चाएँ चलती रहती हैं। कई लोग सोचते हैं भस्त्रिका करने से प्राणशक्ति जागती है, मगर प्राणों को जगाने में यही पर्याप्त नहीं है। हाँ, भस्त्रिका और कपालभाति प्राणायाम के द्वारा कुछ देर के लिए प्राण-स्नायुओं का जागरण होता है। इसलिए यदि प्राणों को जागृत करना है तो प्राणों के मूलतत्त्व को पकड़ना होगा। प्राण क्या है ? क्या हवा को प्राण कहते हैं ? नहीं ! हवा प्राण नहीं है। प्राण शक्ति-स्वरूप है। इस संदर्भ में एक रोचक अन्वेषण है—

एक दम्पत्ति थे। उनमें एक व्यक्ति था बिजली का इंजीनियर। वह अनुसंधान कर रहा था। एक दिन उसको मालूम पड़ा यह जो बाहर की बिजली है, इसकी अपेक्षा अन्दर की बिजली कहीं अधिक शक्तिशाली एवं महत्त्वपूर्ण है। उसने अपने अंगूठे का का एक चित्र लिया। साथ ही और भी कई प्राणियों का चित्र लिया। उन चित्रों में उसको एक विचित्र वस्तु का दर्शन हुआ, देखा कि सभी जड़-चेतन वस्तुओं के चारों ओर एक ज्योति मंडल व्याप्त है। इस ज्योति मंडल को प्रभा-मंडल या औरा भी कहते हैं। उसने देखा एक सूखे पत्ते से लेकर प्रस्तर खण्डों और प्राणवान् जीव जन्तुओं में भी एक शक्ति विराजमान है। वह सिमटती भी है और फैलती भी है। उसने सोचा यह क्या चीज है ? सैकड़ों-हजारों चित्र उसने खींचे और सबमें उस वस्तु को देखा मगर

समझ नहीं पाया कि यह क्या है और क्यों है। इस अनुसंधान से सारे संसार में एक तहलका सा मच गया। अभी भी योरप अमेरिका जर्मनी आदि देशों में इस संबंध में अन्वेषण चालू हैं कि प्राण क्या हैं? इन प्राणों की अनेक लोगों ने परिभाषा देने की कोशिश की मगर अभी भी उनकी परिभाषा विवादास्पद बनी हुई है।

जब उस व्यक्ति ने इस अनुसंधान को सामने रखा और बतलाया कि प्रत्येक पदार्थ में कोई वस्तु है, जो उसके इर्द-गिर्द व्याप्त रहती है, तो लोग बोले—असंभव। क्योंकि यह एक सूखा पत्ता है। मात्र एक पत्ता। इससे परे इसका और कोई भी अस्तित्व नहीं हो सकता। पत्ता एक मैटर (पदार्थ) है। जितना तुम देखते हो उतना ही है। हाँ, इसमें अनेकों रासायनिक तत्त्व हो सकते हैं, यह हम मानते हैं। अगर तुम यह कहो कि इसके चारों ओर एक अदृश्य सूक्ष्म प्रभामंडल व्याप्त है, यह हम नहीं मान सकते। परन्तु धीरे-धीरे जब उसने अपने अन्वेषण का एक अकाट्य प्रमाण सबके सामने प्रस्तुत किया, सबको मानना पड़ा कि हाँ, इसका कथन सत्य है।

यह वैज्ञानिक रूस की एक महिला थी। उसका पति भी उसी के व्यवसाय में काम करता था। दोनों ने मिलकर उस अनुसंधान को पूरा किया। इस अनुसंधान परिणाम को मैंने भी देखा है। मैंने स्वयं अपनी आँखों से दुनिया के लाखों चित्रों को देखा है तथा उनके इर्द-गिर्द ज्योति मंडल एवं उनमें शक्ति के स्पन्दन को भी देखा है। यही वह शक्ति है, जिसे हम प्राण के नाम से जानते हैं।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर में एक शक्ति है। वह शक्ति जब कम होती है तो मनुष्य रोगी होता है। शोकाकुल होता है। उसकी चेतना काम, क्रोध, लोभ और मोह में फंस कर दुर्बल हो जाती है। उसके निर्णय गलत हो जाते हैं। योगाभ्यास के दौरान प्राण को हम किसी भी यौगिक क्रिया द्वारा बढ़ाने की कोशिश करते हैं। इस शक्ति को योग के विभिन्न अभ्यासों द्वारा शरीर के एक अंग से दूसरे अंग में ले जाने की कोशिश करते हैं।-इसी प्रकार इस प्राण को हम जागृत कर महान से महान क्षमताओं का सृजन कर सकते हैं और इस क्षमता को जागृत करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है कुंडलिनी योग।

*

प्राणशक्ति कुण्डलिनी

"योगशास्त्र की अधिकांश शाखाओं-हठयोग, लययोग एवं तंत्रयोग आदि में कुण्डलिनी साधना की विस्तारपूर्वक चर्चा हुई है।[1] हठयोग के ग्रन्थों में इसे सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है और वहां इसे समस्त साधनाओं में श्रेष्ठ तथा मोक्ष द्वार की कुञ्जी कहा गया है। इस प्रकरण में कुण्डलिनी क्या है? उसके जागरण का तात्पर्य क्या है? तथा कुण्डलिनी जागरण के लिए साधना किस प्रकार की जाती है? इन तीन प्रश्नों पर ही विचार किया जा रहा है।

कुण्डलिनी के लिए योग शास्त्र के विवध ग्रन्थों में प्रयोग किये गये नामों में कुण्डली और कुटिलाङ्गी नाम भी हैं, जिनसे विदित है कि इसका भौतिक स्वरूप वक्र अर्थात् टेढ़ा-मेढ़ा है, शायद इसीलिए इसके लिए कई स्थानों पर भुजङ्गी और सर्पिणी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।[2] कुछ स्थानों में इसके लिए तैजसी-शक्ति-जीव शक्ति और ईश्वरी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है,[3] जिससे हमें संकेत मिलता है कि यह एक तैजस शक्ति है, जो शक्ति जीव की स्वयं की अपनी शक्ति है, किन्हीं कारणों से शक्ति स्वभावः उद्बुद्ध नहीं रहती, किन्तु इसे यदि जागृत किया जा सके तो साधक में अनन्त सामर्थ्य (ईश्वर भाव) आ जाता है।

कुण्डलिनी का जागरण क्योंकि अनन्त शक्तियों के साथ-साथ मोक्ष के द्वार तक पहुंचाने वाला है, अतः स्वाभाविक है कि इसके जागरण का उपाय, इसे जागृत करने वाली साधना बहुत सहज नहीं हो। इसी कारण इस साधना को सदा साधकों ने गुरु परम्परा से ही प्राप्त किया है, और गुरुजनों ने अधिकारी शिष्य को ही यह विद्या देनी चाही है, सम्भवतः यही कारण है कि इस साधना का सुस्पष्ट वर्णन किसी ग्रन्थ में नहीं दिया गया है।

कुण्डलिनी के स्थान के सम्बन्ध में किसी प्रकार का वैमत्य नहीं है। यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता है कि मूलाधार चक्र से ऊपर और स्वाधिष्ठान चक्र के नीचे कुण्डलिनी का स्थान है। यह स्थान कन्द स्थान के अतिनिकट है। योनिस्थान के ठीक पीछे स्वयम्भू लिङ्ग की स्थिति है, इस स्वयंभू लिङ्ग में ही सार्धत्रिवलयाकृति में

---

१. हठ प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, योगकुण्डल्युपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, तन्त्रसार, ज्ञानार्णव तन्त्र, शिव संहिता आदि।

२. हठ प्रदीपिका ३.१०४, योगकुण्डल्युपनिषद्

३. वही ३.१०८-१०९

अर्थात् स्वयंभूलिङ्ग को साढ़े तीन बार लपेटे हुए कुण्डलिनी स्थित रहती है।

स्मरणीय है कि आधुनिक शरीर विज्ञान अथवा चिकित्सा शास्त्र के विद्वानों को शरीर के इस भाग में ऐसे किसी स्थूल अवयव के होने की सूचना प्राप्त नहीं हुई हैं जिसका चित्र खींचा जा सके, अथवा किसी भी यंत्र के द्वारा उसे देखा और परखा जा सके। किन्तु साथ ही यह भी स्मरणीय है कि आधुनिक चिकित्सा शास्त्र से सम्बद्ध शरीर विज्ञान यह निर्विवादरूप से स्वीकार करता है कि मानव के शरीर में चेतनाकेन्द्र यद्यपि मस्तिष्क अवश्य है तथापि चेतना से सम्बद्ध समस्त ज्ञान और चेष्टाओं का संचालन मस्तिष्क से ही न होकर अनेक बार सुषुम्ना के द्वारा भी होता है, और यह सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड (Spinal eard) के मध्य में स्थित है। साथ ही वहां यह भी स्वीकृत है कि पूर्ण चेतना युक्त मानव के भी मस्तिष्क और सुषुम्ना का केवल कुछ अंश ही क्रियाशील रहता है, सम्पूर्ण नहीं। जिस मनुष्य के मस्तिष्क और सुषुम्ना के चेतना केन्द्र अर्थात् समझने और क्रिया करने के नियामक केन्द्र का जितना अधिक अंश क्रियाशील होता है, वह मनुष्य उसी अनुपात में समझने और कुछ करने में सक्षम हो पाता है।

इसी प्रसंग में योगशास्त्र में वर्णित नाड़ी तन्त्र को भी स्मरण कर लेना आवश्यक होगा, जिसमें शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियों के होने की चर्चा करने के बाद सुषुम्ना इडा पिंगला कुहू कूर्म यशस्विनी पयस्विनी आदि चौदह अथवा दस को प्रमुख बताकर उनमें भी प्रथम तीन अर्थात् सुषुम्ना इडा और पिङ्गला को प्रधान कहा गया है, जिनमें अलग अलग समय में स्थूल या सूक्ष्म प्राणों का संचार होता होता है। इनमें से इडा और पिङ्गला क्रमशः बायें और दाहिने नासिका विवर से कन्द स्थान तक स्थित मानी जाती हैं। सुषुम्ना कन्द के मध्य से प्रारम्भ होकर मेरुदण्ड के बीच से होती हुई भ्रूमध्य (आज्ञा चक्र) तक जाती है, जहाँ उसका अंन्तिम छोर मस्तिष्क से मिलता है। इस अन्तिम छोर को योग परम्परा की भाषा में ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं। सुषुम्ना नाड़ी का दूसरा नाम ब्रह्मनाड़ी भी है। इस नाड़ी का प्रारम्भ यद्यपि कन्द (नाड़ी कन्द) के मध्य से है, किन्तु मूलाधार चक्र के पास एक ब्रह्मग्रन्थि स्वीकार की जाती है। इस ग्रन्थि का भेदन मूलाधार चक्र के जागरण के साथ होता है। इस नाड़ी में दो अन्य ग्रन्थियां भी योगपरम्परा में स्वीकार की गयी हैं विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि। विष्णुग्रन्थि हृदय के पास मानी जाती है और रुद्रग्रन्थि भ्रूमध्य से ऊपर। अनाहतचक्र के जागरण से विष्णुग्रन्थि का भेदन होता है और आज्ञाचक्र के जागरण से रुद्रग्रन्थि का भेदन। रुद्रग्रन्थि के भेदन के बाद योगी के लिए कुछ भी कर्त्तव्य शेष नहीं रहता। वह परमपद प्राप्त कर लेता है। दूसरे शब्दों में वह रुद्र विष्णु अथवा परब्रह्म के सदृश हो जाता है।

योगशास्त्र की परम्परा में एक बात यह भी निर्विवाद रूप से स्वीकृत है कि सामान्यरूप से प्राण इडा या पिङ्गला नाड़ी में बारी बारी से गतिशील रहते हैं; किन्तु योगी साधक उन्हें सुषुम्ना में साधना के द्वारा प्रवाहित कर लेता है। उसके अनन्तर ही अध्यात्म के क्षेत्र में उसका प्रवेश होता है, उसका चित्त एकाग्र हो पाता है।

साधना के क्रम में प्राणायाम साधना के द्वारा ब्रह्मनाड़ी के मुख, जो मूलाधार चक्र के पास स्थित तथा कफ आदि अवरोधक तत्त्वों द्वारा रुंधा हुआ है, कफ आदि अवरोध हटने पर खुल जाता है, तब उसमें प्राणों का प्रवेश हो जाता है, केवलकुम्भक का यहीं से प्रारंभ होता है, इस स्थिति का ही वर्णन कहीं ब्रह्मग्रन्थिभेदन के नाम से और कहीं कुण्डलिनी जागरण के नाम से किया गया है ।

योग परम्परा में प्रायः सभी सम्बद्ध ग्रंथों में प्राप्त उपर्युक्त निर्विवाद वर्णन से निम्नलिखित तथ्य प्रगट होते हैं ।

१. सुषुम्ना नाड़ी का आरम्भ कन्द स्थान के मध्य से है और आज्ञाचक्र के ऊपर सहस्रार पद्म में मिलकर यह समाप्त होती है ।
२. कन्द स्थान मूलाधार चक्र से लगभग दो तीन अंगुल ऊपर और नाभि के पास अथवा नाभि के नीचे है ।
३. सुषुम्ना नाड़ी में कन्द स्थान से निकलने के बाद मूलाधार चक्र के पास पहली ब्रह्मग्रन्थि, हृदय (अनाहतचक्र) के पास द्वितीय विष्णुग्रन्थि तथा भ्रू मध्य (आज्ञाचक्र) से ऊपर तृतीय रुद्रग्रन्थि है, इसके बाद ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना सहस्रार पद्म या मस्तिष्क में मिल जाती है ।
४. सुषुम्ना नाड़ी चेतना का केन्द्र स्थान है अर्थात् समस्त ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में चेतना का संचार सुषुम्ना द्वारा ही होता है ।
५. सुषुम्ना में ही मूलाधार से आरम्भ होकर आज्ञाचक्र तक (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत विशुद्ध और आज्ञा इन) छ चक्रों की स्थिति है । ये सभी चक्र चेतना के विशिष्ट केन्द्र हैं, जो प्रायः जागृत या क्रियाशील नहीं रहते, साधना द्वारा इन्हें क्रियाशील (जागृत) किया जाता है ।
६. प्राण अथवा प्राणशक्ति का सुषुम्ना में निर्बाध प्रवाह अर्थात् ऊपर आज्ञाचक्र से भी ऊपर सहस्रारपद्म तक जाना योग साधना की उच्चतम परिणति है ।
७. किन्तु प्राण इस नाड़ी में सामान्यतया प्रवाहित नहीं हो पाते । इडा अथवा पिङ्गला से कन्द स्थान में सुषुम्ना में प्रवेश तो करते हैं, किन्तु प्रथमग्रन्थि अर्थात् ब्रह्मग्रन्थि, जिसे प्रथम अवरोध कह सकते हैं, के कफ आदि से बन्द रहने के कारण आगे बढ़ नहीं पाते, वहीं रुक जाते हैं ।
८. सुषुम्ना नाड़ी तीन खण्डों में विभाजित है : (१) कन्द से मूलाधार चक्र या ब्रह्मग्रंथि तक (२) ब्रह्मग्रन्थि से विष्णुग्रन्थि तक तथा (३) विष्णुग्रन्थि से रुद्रग्रन्थि तक ।
९. प्राणायाम साधना द्वारा प्राण अपान का मिलन होने पर और उससे अग्नि के अत्यंत तीव्र होने पर अवरोधक (अर्गल) तत्त्व हट जाते हैं, और उसके बाद उसमें प्राणों का प्रवाह प्रारम्भ होता है ।

योग साधना के ग्रन्थों में एक बात और कही गयी है, प्राणायाम साधना के द्वारा सुषुम्ना में प्राणों का प्रवेश होने पर जब केवल कुम्भक प्रारम्भ होता है तब चित्त और प्राण क्रमशः ऊपर उठने लगते हैं, उस स्थिति में क्रमशः पृथिवी धारणा, जलधारणा,

आग्नेय धारणा, वायवी धारणा, आकाश धारणा सम्पन्न की जाती है। इन धारणाओं में क्रमशः प्राण और चित्त मूलाधार आदि प्रत्येक चक्रों पर स्थित होते है। आज्ञा चक्र से ऊपर प्राण और चित्त के पहुंच कर स्थिर होने को ध्यान कहते हैं, और उससे भी ऊपर सहस्रार पद्म में प्राण और चित्त की स्थिति को समाधि कहते हैं । ये सभी क्रमशः उत्तरोत्तर स्थितियां हैं ।

कुण्डलिनी के सम्बन्ध में भी यह तथ्य बिना किसी सन्देह के स्वीकार किया जाता है कि कुण्डलिनी स्वयंभू लिङ्ग में साढ़े तीन बार लिपट कर स्थित है । सुषुम्ना का मुख और इसका मुख पास पास है, अथवा सुषुम्ना का मुख इसके मुख में बन्द है। साधना के द्वारा सुषुम्ना का मुख खुल जाने पर कुण्डलिनी उसमें प्रवेश कर जाती है ।

इन उपर्युक्त कथनों में दोनों में ही पूर्णतया समानता है, मानों दोनों कथनों में भाषा भेद या शब्दों के भेद से एक ही बात कही गयी है । उदाहरणार्थ—

१. कन्द स्थान से मूलाधार (ब्रह्मग्रन्थि) चक्र तक सुषुम्ना का प्रथम अंश है जिसमें प्राण प्रतिश्वास प्रश्वास में संचरित होते हैं, तथा कन्द और मूलाधार के बीच स्वयं-भूलिङ्ग स्थित है, जिसमें कुण्डलिनी लिपटी हुई हैं ।
२. सुषुम्ना मुख खुलने पर कुण्डलिनी सुषुम्ना में प्रवेश करती है, तथा साधना द्वारा सुषुम्ना मुख से कफ आदि अवरोधक पदार्थ हट जाने पर प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करते हैं।
३. केवल कुम्भक की साधना से क्रमशः ग्रन्थिभेदन पूर्वक प्राण सुषुम्ना में ऊपर को उठते हैं तथा एक बार सुषुम्ना में कुण्डलिनी का प्रवेश होने पर कुण्डलिनी सुषुम्ना में क्रमशः ऊपर की ओर उठती जाती है।
४. प्राण स्वयं शक्ति स्वरूप है तथा कुण्डलिनी शक्ति स्वरूप अथवा प्राणशक्ति रूप है ।
५. सुषुम्ना में प्राणों के प्रवेश के अनन्तर केवलकुम्भक की सिद्धि हो जाना प्राण साधना की सर्वोत्तम सिद्धि है, इस साधना में उत्तरोत्तर पंचभूत धारणा (पृथिवी-धारणा, जलधारणा, आग्नेयधारणा, वायवीधारणा, एवं आकाशधारणा, के सिद्ध होने पर प्राण आज्ञा चक्र में प्रवेश करते हैं। यहां ध्यान की सिद्धि होती है, और उसके बाद प्राणों का जो ऊर्ध्व गमन है, वह इस साधना की अन्तिम समाधि सिद्धि है, यहीं योगी को कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है । जिसके बाद कुछ शेष नहीं रहता। दूसरी ओर कुण्डलिनी भी क्रमशः एक-एक चक्रों के क्रमशः जागरण और ग्रन्थिभेदन के साथ आज्ञाचक्र के बाद सहस्रार पद्म में पहुंचती है, जो इस क्रम में सर्वोच्च सिद्धि है। इससे मोक्ष का द्वार अनावृत्त हो जाता है । इसीलिए कुण्डलिनी सिद्धि को मोक्ष द्वार की कुंजी कहा है ।

इस प्रकार स्वरूप, साधना क्रम, सिद्धि क्रम और परिणाम (फल) के पूर्ण साम्य को देखते हुए इस निर्णय पर पहुंचना अनुचित न होगा कि कुण्डलिनी जागरण और

प्राणों का सुषुम्ना में प्रविष्ट होकर उत्तरोत्तर ऊपर को पहुंचते हुए ब्रह्मरन्ध्र द्वारा ऊपर तक पहुंच जाना, जिसे **केवलकुंभक** की सिद्धि कहते हैं, परस्पर भिन्न नहीं बल्कि अभिन्न हैं, एक हैं, इस एक ही स्थिति का दत्तात्रेय योगशास्त्र योगतत्त्वोपनिषद् आदि ग्रन्थों में **केवलकुंभक** की सिद्धि के रूप में वर्णन किया है। इसके विपरीत तन्त्र से प्रभावित अथवा सिद्ध या नाथ परम्परा से प्रभावित ग्रन्थों में (जहां शिव को योग का आदि उपदेष्टा कहा गया है) इस स्थिति को ही **कुण्डलिनी जागरण** के रूप में वर्णित किया गया है। स्मरणीय है कि दत्तात्रेय योगशास्त्र और योगतत्त्वोपनिषद् आदि में भगवान् विष्णु के अवतार दत्तात्रेय को दूसरे शब्दों में भगवान् विष्णु को योग के उपदेष्टा के रूप में निबद्ध किया गया है। जिन ग्रन्थों से **केवलकुंभक** की साधना की विधि और क्रम वर्णित है, उनमें कुण्डलिनी जागरण की बात नहीं है। और जिनमें कुण्डलिनी जागरण की चर्चा हुई है उनमें **केवलकुंभक** की चर्चा नहीं मिलती।

फलतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि **प्राणशक्ति** और **कुण्डलिनी शक्ति** एक ही शक्ति के दो नाम हैं। कुण्डलिनी का जागरण और प्राणों का सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश और उत्तरोत्तर ऊर्ध्वगमन परस्पर अभिन्न हैं। इनमें केवल शब्दभेद है, भाषा भेद है, वस्तुभेद अर्थात् साधना और सिद्धि में कोई भेद नहीं है।

यहां इस एक तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि प्राणशक्ति का अर्थ श्वास प्रश्वास के अन्दर और बाहर प्रविष्ट होने वाली वायु नहीं है। प्राणशक्ति से निरन्तर सम्बद्ध होने के कारण इसे भी कभी-कभी प्राण कह लेते हैं, ये बाह्य प्राण हैं, जो प्राणशक्ति से भिन्न हैं। इनको ही यदि प्राण मानेंगे तो इन्हें बाहर निकालना कौन चाहेगा, क्योंकि कोई नहीं चाहता कि प्राण बाहर निकलें। यदि यह बाहरी श्वास प्रश्वास ही प्राण होता, तब तो प्राण निकल जाने पर इन्हें ही भरकर और पुनः न निकलने देने के लिए कृत्रिम उपायों से मार्ग निरोध करके किसी को प्राणवान् अर्थात् जीवित किया जा सकता। किन्तु ऐसा नहीं है। इसका कारण है कि प्राणशक्ति और बाहरी वायु, जिसे हम श्वास प्रश्वास द्वारा अन्दर लेते हैं, परस्पर भिन्न है। दो चीजें हैं, एक नहीं है। इसीलिए प्राणों का, प्राणशक्ति के बाह्य अभिव्यक्तरूप का, विभाजन करते हुए स्थूल वायु अथवा स्थूल प्राणों का विभाजन 'प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान', इन पांच नामों में किया जाता है, तथा इनके स्थानों और कार्यों का पृथक्-पृथक् रूप से वर्णन किया जाता है। इन पांच स्थूल प्राणों के अतिरिक्त 'नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय' पांच अन्य स्थूल प्राण भी हैं, किन्तु ये प्राण प्राण-अपान की अपेक्षा सूक्ष्म हैं, अथवा इनकी क्रिया का बोध सर्वसामान्य को कम होता है। महत्त्व इन सभी का समान है, कोई इनमें प्रधान या अप्रधान नहीं है, कार्य सबके भिन्न-भिन्न हैं। इन दसों प्राणों में श्वास प्रश्वास में आने जाने वाला वायु क्योंकि अत्यन्त स्थूल है, अथवा यों कहें कि इसका बोध, इसकी गति का बोध, सबको निरन्तर होता रहता है, अतः प्राणशक्ति के रूप में इसे भी प्राण कह दिया गया है।

इस मूल प्राण को **प्राणशक्ति** अथवा **शक्ति** कह सकते हैं। इसे ही कुण्डलिनी के पर्यायवाची शब्दों में **शक्ति**, **जीवशक्ति** और **ईश्वरी** आदि नामों से स्मरण किया जाता

है। यह प्राण ही चेतना का मूल आधार है। सम्पूर्ण बोध (ज्ञान ग्रहण) और क्रिया का संचालन इसके द्वारा ही होता है। इसकी महिमा का वर्णन करते हुए ही प्रश्न उपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है 'तस्मिन् उत्क्रामति इतरे सर्व एव उत्क्रामन्ते' [प्रश्न २.४]।

इस प्राणशक्ति का चेतना, शक्ति का, मुख्य केन्द्र मस्तिष्क है। इसके उपकेन्द्र सुषुम्ना नाड़ी में हैं। सुषुम्ना नाड़ी के तीन खण्ड हैं। यदि मस्तिष्क को भी कार्य के आधार पर एक कहना चाहें तो चार खण्ड हैं (१) मस्तिष्क इसका सबसे प्रशस्त और प्रधान भाग है, इसे योगशास्त्र की भाषा में **सहस्रार पद्म** कहा जाता है। (२) उससे नीचे आज्ञाचक्र से अनाहत चक्र का अंश द्वितीय भाग है। इन दोनों के संयोग स्थल को रुद्रग्रन्थि कहते है। विद्युत तकनीक की भाषा में चाहें तो इसे एक फ्यूज कह सकते हैं। इस भाग के ऊपरी अंश से अवबोधक चेतना और प्रेरक चेतना का नियमन होता है जिसे आज्ञाचक्र कहते हैं। शरीर में यह स्थल भ्रू मध्य में माना गया है। इससे कुछ नीचे कण्ठ के पास विशुद्धचक्र है, जहां से अत्यन्त सूक्ष्म ज्ञान और क्रिया चेतना का नियम होता है। यहां आकाश तत्त्व की प्रधानता है। आकाश के गुण शब्द की उत्पत्ति और उसके ग्रहण का नियमन केन्द्र यहीं पर है। उससे नीचे हृदय के पास सुषुम्ना के इस अंश का सबसे निचला भाग है। जिसे वायु का स्थान कहा जाता है। सम्पूर्ण स्पर्श चेतना एवं अंग प्रत्यंगों में कम्पन अथवा गति का नियमन यहां तक कि रक्त की गति का नियमन भी इसी केन्द्र से होता है।

सुषुम्ना का तृतीय भाग अनाहत चक्र से मूलाधार चक्र तक है। यह भाग जहां द्वितीय भाग से मिलता है, उस सन्धि को विष्णुग्रन्थि के नाम से स्मरण किया जाता है। स्थूल तत्त्व अग्नि, जल और पृथिवी तत्त्वों के स्थान अर्थात् इन तत्त्वों से सम्बद्ध चेतना केन्द्र इसी भाग में हैं। सबसे नीचे गुदा के कुछ ऊपर **मूलाधार चक्र** पृथिवी स्थान है। उससे कुछ ऊपर योनि स्थान से पीछे पेड़ू के निकट स्वाधिष्ठान चक्र **जल स्थान** है तथा उससे भी ऊपर नाभि के निकट मणिपूर चक्र **अग्नि का स्थान** माना जाता है। गन्ध रस एवं रूप विषय बोध की चेतना का नियमन तथा मल विसर्जन वीर्य धारण एवं विसर्जन तथा समस्त शरीर के धारण की क्रियाओं का नियमन इन चेतना केन्द्रों के द्वारा ही होता है। यह सुषुम्ना भाग जहां ऊपरी अर्थात् द्वितीय भाग से मिलता है, उस सन्धि को विष्णुग्रन्थि कहते हैं, यह ऊपर कह चुके हैं। इसका सबसे निचला भाग ब्रह्मग्रन्थि कहलाता है। यह भाग कफ आदि अवरोधक तत्त्वों से ढका हुआ है, अतः सुषुम्ना के चतुर्थ भाग से इसका निर्बाध सम्बन्ध नहीं बन पाता। इसके आवरण मल को दूर करने के लिए अनेक प्रकार की साधनाओं की व्यवस्था योगशास्त्र में दी गयी है। इस मल के पूर्णतया हटने पर ब्रह्म नाडी के इस मुख के खुलने को ही ब्रह्मग्रन्थि भेदन या कुण्डलिनी का प्रथम उद्बोधन कहते हैं।

सुषुम्ना नाड़ी का चतुर्थ भाग कन्द स्थान से मूलाधार चक्र के मध्य का भाग है। ब्रह्मग्रन्थि द्वारा यह भाग एक ओर मूलधार चक्र के पास सुषुम्ना के तृतीय भाग से जुड़ता है और दूसरी ओर कन्द से जुड़ा है। शरीर की सभी नाड़ियां इसी कन्द स्थान पर आकर

मिलती हैं और सुषुम्ना से प्राप्त चेतना के विषयबोधचेतना अथवा क्रियाचेतना को प्राप्त करके सम्पूर्ण शरीर में फैलाती हैं और उसे क्रियाशील बनाती हैं। इस कन्द स्थान को विद्युत तकनीक की भाषा में ट्रांसफार्मर कह सकते हैं, ऐसा पावर हाउस कह सकते हैं जहां से विद्युत का उत्पादन तो नहीं किन्तु वितरण का कार्य होता है।

क्योंकि शरीर की समस्त ज्ञान अथवा क्रिया का नियमन यहीं से होता है। यहां से प्राप्त चेतना से, यहां से प्राप्त शक्ति से, शरीर भर में फैली हुई नाड़ियां उन अंगों को शक्ति अथवा क्रियाशीलता देती है, अतः सुषुम्ना के इस भाग को शक्ति जीवशक्ति ईश्वरी आदि नामों से स्मरण किया जाता है। क्योंकि यह भाग ही शरीर के समस्त भाग को चेतना अथवा जीवन के चिह्न देता है, इसलिए इस भाग के स्थूल आधार अंश को स्वयंभूलिङ्ग कहना ठीक ही है।

सुषुम्ना का यह भाग यद्यपि सुषुम्ना के इससे अव्यवहित पूर्वभाग अर्थात् तृतीय भाग से पूरी तरह जुड़ा नहीं है अर्थात् कफ आदि मलों के कारण अर्गलाबद्ध है, अवरुद्ध है, अतः अनन्त चेतना के स्रोत से प्रवाहित होनेवाली चेतना शक्ति इस अंश में नहीं आ पाती और इसी कारण अन्य जुड़े हुए नाड़ी तन्त्र में और उसके द्वारा शरीर के समस्त ज्ञान इन्द्रियों और कर्म इन्द्रियों को सम्पूर्ण चेतनाशक्ति नहीं मिल पाती। फलतः मनुष्य (मनुष्य आदि सभी प्राणी) न सम्पूर्णज्ञान सम्पन्न होता है, और न सम्पूर्ण रूप से क्रिया शक्ति से सम्पन्न। वह अल्पज्ञ और अल्प शक्तिमान रहता है। ठीक वैसे ही जैसे मुख्य पावर हाउस के प्रधान तार से अपने तार के भली प्रकार न जुड़ने के कारण अथवा संयोजक तार (फ्यूज वायर) के क्षीण (पतले) होने के कारण हमें थोड़ी विद्युत शक्ति ही मिल पाती है। मुख्य पावर हाउस में जितनी शक्ति है, उतनी शक्ति का उपयोग हम नहीं कर पाते। यदि इन दोनों को सशक्त तार से जोड़ दिया जाता है, तो विद्युत का निर्बाध प्रवाह एक ओर से दूसरी ओर तक मुख्य केन्द्र से गौण केन्द्र तक समान रूप से होने लगता है। प्राणायाम द्वारा, ध्यान द्वारा अथवा कुण्डलिनी जागरण के लिए बताए गये अन्य उपायों द्वारा साधक सुषुम्ना के इस भाग को मुख्य भाग से जोड़ने का प्रयत्न करता है। इस साधना में, इस कार्य में, जब उसे सफलता मिल जाती है, तब वह अनन्त शक्तियों से सम्पन्न हो जाता है। इस सफलता को ही सीधी-साधी लौकिक भाषा में कहना चाहें तो कह सकते हैं, वह ईश्वर के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

इस स्थिति में पहुंचने पर क्योंकि उसकी सम्पूर्ण चेतना का प्रयोग होने लग जाता है, अतः वह पूर्ण प्रकाशमय पूर्ण ज्ञानमय हो जाता है, अविद्या की निवृत्ति हो जाती है, और क्योंकि अविद्या ही अस्मिता (अहंभाव) राग द्वेष अभिनिवेशरूपी क्लेशों का मूल है.[1] जिनके कारण यह संसार चक्र चलता है, अतः इसकी (अविद्या की) निवृत्ति से साधक संसार चक्र सहित अस्मिता आदि क्लेशों से छूट जाता है। दूसरे शब्दों में वह मुक्त हो

---

१ अविद्या-अस्मिता-राग द्वेष-अभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः, अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्त-तनु-विच्छिन्न-उदाराणाम्। योगसूत्र २१३-४।

हो जाता है।

इस प्राण शक्ति के अथवा कुण्डलिनी या जीव शक्ति के जागरण के कई उपाय हैं। कई प्रकार की साधना है। प्राणायाम साधनाएं उनमें एक है। जिस प्रकार आतसी शीशे के द्वारा सूर्य के बिखरे हुए प्रकाश का एक स्थान पर केन्द्रित करके वहां ताप (अग्नि) उत्पन्न कर दिया जाता है, उसी प्रकार ध्यान द्वारा भी सामान्य रूप से अपने द्वारा प्रयुक्त होने वाली शक्ति को केन्द्रित करके ब्रह्मनाड़ी के मुख को उद्घाटित करते हुए प्राणशक्ति अर्थात् कुण्डलिनी को जागृत किया जा सकता है, और प्रधान चेतना शक्ति (अनन्त चेतना शक्ति) से जोड़ा जा सकता है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार लोक में प्रज्वलित गैस को भिन्न पदार्थ लोहे आदि पर डालकर उसे गरम करना पिघलाना जोड़ना आदि क्रियाएं सम्पन्न कर ली जाती है, उसी प्रकार जिसने अपनी अनन्त चेतना शक्ति को जागृत कर लिया है, ऐसा सिद्ध गुरु अपनीशक्ति से दूसरे शाधक (अधिकारी साधक) की प्राणशक्ति को मूल चेतना शक्ति, कुण्डलिनी, को जागृत कर सकता है। इस क्रिया को ही योगियों की परम्परा में शक्तिपात करना कहते हैं।

इस प्राणशक्ति को चेतनाशक्ति जीवनशक्ति अथवा कुण्डलिनी आदि नामों से स्मरण की जाने वाली शक्ति को उद्बुद्ध करने के अनेक मार्ग हैं, अनेक उपाय हैं, अनेक साधनाएं हैं। साधना के क्रम में हम या कोई साधक या सिद्ध इतना ही कह सकता है कि यह मार्ग अमुक स्थान तक अवश्य जाता है, क्योंकि उस मार्ग को अथवा उसके चित्र को (यथार्थ चित्र को) उसने देखा है या समझा है। किन्तु जिस मार्ग को उसने देखा नहीं, उस पर चला नहीं, अथवा चलना प्रारम्भ करके मार्ग कठिन लगने से, मार्ग समक्ष में न आने से, उसे छोड़ दिया है उसके सम्बन्ध में यह कहना कि यह मार्ग अमुक स्थान पर नहीं ले जाएगा यदि अनुचित नहीं तो कठिन अवश्य है। अत: अच्छे साधक साधना के अन्य मार्गों के सम्बन्ध में मौन का अवलम्बन करना ही उचित समझते हैं। केवल उस साधना विधि का उपदेश करते हैं, जिस विधि को उन्होंने समझ लिया है। किसी का खण्डन अथवा विरोध वे नहीं करते।

अनन्त चेतना शक्ति के स्रोत को जागृत करने के अनेक उपायों में से किसी भी एक उपाय का ही आश्रयण साधक को करना चाहिए। हां प्राथमिक तैयारी के लिए साधना की पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए, साधना की योग्यता प्राप्त करने के लिए एक साथ एक से अधिक उपायों को भी अपनाया जा सकता हैं। यमों और नियमों का पालन अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी का त्याग) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन महाव्रतों का पालन , शौच सन्तोष तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान (भक्ति-प्रणति) की समष्टिरूप क्रियापथ का अनुसरण अवश्य करना चाहिए। आसन मुद्रा और बन्धों द्वारा प्राणायाम द्वारा नाड़ीशुद्धि करके भी साधना की योग्यता प्राप्त होती है।

हठयोग के ग्रन्थों में इस साधना की तैयारी के क्रम में स्थूल शरीर की शुद्धि के लिए नेति धौति बस्ति कुन्जर शंखप्रक्षालन और त्राटक इन षट्कर्मों की तथा नाड़ी शुद्धि के लिए महामुद्रा, महाबन्ध तथा सूर्यभेद उज्जायी, शीतली, सीत्कारी भृङ्गी

एवं भस्त्रिका प्राणायाम प्रकारों की विधि बताई गयी है, जिनके द्वारा साधक स्थूल शरीर एवं समस्त नाड़ियों की शुद्धि करके केवलकुम्भक अथवा कुण्डलिनी साधना में प्रवृत्त होता है। इस केवलकुम्भक के लिए पहले सहित कुम्भक प्राणायाम किया जाता है। इसके द्वारा भी नाड़ी शुद्धि होती है। जैसे-जैसे प्राण और अपान निकट आने लगते हैं, मणिपूर चक्र अर्थात् नाभि स्थान के पास स्थित अग्नि तीव्र होती है, उसके तीव्र ताप से ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना के मुख (अग्रभाग) पर जमा हुआ कफ आदि अवरोधक मल नष्ट हो जाता है, हट जाता है। अवरोधक मल के पूर्णतया हट जाने पर सुषुम्ना का मुख स्वतः खुल जाता है, तीव्र अग्नि का ताप इस कार्य को सम्पन्न करता है। सुषुम्ना का मुख खुल जाने पर कन्द से जुड़ा हुआ सुषुम्ना का निम्नतम भाग, जिसे हमने सुषुम्ना का चतुर्थ भाग कहा है, इस शुद्ध हुए सुषुम्ना मुख से, जो मूलाधार चक्र के पास है, जुड़ जाता है और उसमें स्थित प्राणशक्ति, जिसे कुण्डलिनी या जीवशक्ति भी कहते हैं, मूल चेतना केन्द्र से जुड़ जाती है। अर्थात् कुण्डलिनी जागृत हो जाती है। इस साधना क्रम में शरीर और स्थूल नाड़ी की शुद्धि पहले होती है, अतः शरीर में विद्यमान प्रत्येक प्रकार के रोगों की निवृत्ति सर्वप्रथम होती है। जिसके फलस्वरूप व्याधि और स्त्यान-रूप विघ्नों की निवृत्ति होती है। इसके बाद क्रमशः स्थूल एवं सूक्ष्म नाड़ियों की शुद्धि होने पर संशय प्रमाद आदि विघ्न भी दूर होते हैं और साधक की साधना निर्विघ्न रूप से आगे बढ़ने लगती है।

चक्रों के स्थान

कुण्डलिनी जागरण कैसे ?

कुण्डलिनी के विषय में एक आम धारणा है कि यह एक महान शक्ति है जो मनुष्य के भौतिक शरीर में सुषुप्तावस्था में विद्यमान है। यह युग का सौभाग्य है कि सारा विश्व आज इसे चेतना के विज्ञान के रूप में समझ रहा है और महसूस कर रहा है कि इसका जाति, धर्म, राष्ट्रीयता या ईश्वर से कोई सम्बन्ध नहीं है। अब तक कुण्डलिनी पर लिखित पुस्तकों और अनेकानेक महात्माओं द्वारा वांछित कुण्डलिनी को अदृश्य और चमत्कारिक शक्ति ही बताया गया है। परन्तु यदि हम कुण्डलिनी योग के वैज्ञानिक और व्यावहारिक पक्षों का अध्ययन और विश्लेषण करेंगे तो पायेंगे कि इसका सम्बन्ध भौतिक शरीर से भी है, क्योंकि इस शक्ति को जगाने के लिए स्थूल ग्रन्थियों का सहारा लिया जाता है, तो इस चेतना को शिव और आधार को शक्ति कहा गया है। सांख्य में इन स्वरूपों को पुरुष-प्रकृति, वेदों में जीव-ब्रह्म, चीनी दर्शन में यिङ्याङ, हठ योग में इसे इड़ा-पिंगला, गंगा-जमुना, सूर्य-चन्द्र तथा विज्ञान में पदार्थ-ऊर्जा के रूपों में अभिव्यक्त करते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि मेरुदण्ड में निचले छोर के पास पेरियन में एक सूक्ष्म केन्द्र या ग्रंथि है जहां अनन्त शक्ति सुषुप्त पड़ी हुई है तथा जिसे जगाया जा सकता है। इस शक्ति के जागने से हमारा अंतर्ज्ञान प्रस्फुटित होता है तथा चेतना का आयाम बढ़ता चला जाता है। इस काल में साधकों को सामान्य चेतना से भिन्न अनेकानेक आश्चर्य-जनक अनुभव होते हैं और इसे ही धार्मिक भाषा में ईश्वरानुभूति कहते हैं। ये जागरण मस्तिष्क के केन्द्र में क्रमशः होते हैं। इस केन्द्र को हजारों दल वाला कमल अर्थात् सहस्रार चक्र कहा गया है। वास्तव में कुण्डलिनी योग नामक कोई विशिष्ट साधना नहीं है। बल्कि दुनियां की सभी साधनायें, सभी योग जो भी चेतना के विकास में सहायक है वे सब कुण्डलिनी योग के अन्तर्गत ही आते हैं। इस शक्ति जागरण के लिए साधकगण अपनी सामर्थ्य एवं पसन्द के अनुसार साधना का चुनाव करते हैं। इसमें मंत्र योग, हठयोग मुख्य हैं। नादयोग, क्रियायोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि से भी कुण्डलिनी का जागरण होता है। इसके अलावा मादक द्रव्यों के प्रयोग को भी शक्ति जागरण में कारगर होते देखा गया है, इसका मतलब यह नहीं कि आप भी इसी रास्ते को अपनायें। कालक्रम में साधना की यह शुद्धता धूमिल होती गई। साधना का रूप विकृत होता गया और भ्रान्तियों के चंगुल में आकर साधकगण इस पथ पर अग्रसर होने से हिचकिचाने लगे।

कुण्डलिनी योग में प्राणायाम और बंध का रास्ता द्रुतगामी और शार्टकट है

परन्तु इसमें थोड़ी भी चूक होने पर अनेक खतरों का सामना करना पड़ सकता है। जब तक सुयोग्य गुरु नहीं मिले, तब तक इसे प्रारम्भ नहीं करना चाहिए। कुण्डलिनी साधना में सबसे निरापद मार्ग है मन्त्र साधना। भले ही इसमें मंथर गति से चलना पड़े परन्तु सफलता निश्चित है किसी भी जन्म में। इसमें कोई भी खतरा चौंका देने वाला नहीं हैं।

कुण्डलिनी जागरण काल में साधकों के अचेतन के संस्कार अनेकानेक वीभत्स रूपों में प्रकट होते हैं। यदि साधक ने अपनी मानस भूमिका को तैयार नहीं किया, अपनी सजगता को नहीं बढ़ाया, अपने शरीर को शुद्ध नहीं कर लिया, तो वह उस अनुभव को संभाल सकने में असमर्थ हो जाता है तथा परिणामस्वरूप विक्षिप्त, पागल या अन्य भयंकर रोगों के शिकार होने की गुंजाइश भी हो सकती है इसलिए त्वरित मार्ग प्राणायाम और बंधों के अभ्यास से अच्छा है— संगीत योग, मन्त्र योग तथा क्रिया योग की निरापद साधना। सबसे सुरक्षित मन्त्रयोग है। इसमें साधक के अन्तर्व्यक्तित्व के मुताबिक तथा अक्षरों के उच्चारण; वर्ण, ग्रह, नक्षत्र, आवृत्ति, गति, प्रकृति आदि के आधार पर मंत्रों का चयन किया जाता है। भक्ति पक्ष में मन्त्र का वह महत्त्व नहीं होता। साधक की भावना के अनुसार उसकी उन्नति होती है, परन्तु तन्त्र में मन्त्र साधना का के लिए बहुत ही विधानों का पालन करना अनिवार्य होता है। अतः सभी कुछ समझने के बाद यदि आप कुण्डलिनी योग की साधना प्रारम्भ करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम आपको अपने शिष्यत्व का विकास करना होगा। फिर एक योग्य गुरु से दीक्षा ग्रहण करने के बाद आप अनन्त शक्ति के स्रोत में डुबकियां लगाने में समर्थ हो सकेंगे।

क्या आप अपने जीवन की परिभाषाओं को बदलना चाहते हैं? देश, काल और पदार्थ की सीमाओं को लाँघकर सर्वोच्च चेतना में विचरण करना चाहते हैं, दुनिया के इतिहास में अपना नाम रोशन करना चासते हैं, जीवन-मृत्यु और सृष्टि के रहस्यों को खोलना चाहते हैं। पूर्ण योग या पूर्ण भोग हेतु अपने को सामर्थ्यवान् बनाना चाहते हैं, अपने को आधि, व्याधि और उपाधि से मुक्त करना चाहते हैं तो आइये, दृढ़संकल्पित होकर शरीर और मन के सन्तुलन हेतु प्रतिदिन नियमित रूप से आधा घण्टा आसन-प्राणायाम की उपासना करें, नाड़ियों की शुद्धि हेतु हठयोग का अभ्यास करें तथा मंत्र-योग और भक्ति योग से चित्त की भूमिका तैयार करें।

———

चक्र और चक्र साधना

योग साधना की परम्परा में चक्रों का ध्यान और उनमें चित्तलय की विशेष महिमा स्वीकार की जाती है। ये चक्र वस्तुतः क्या हैं ? अथवा शरीर में इन चक्रों की वास्तविक सत्ता है या नहीं ? इस विषय पर कुछ आचार्यों एवं शरीर रचना विज्ञानियों में मतभेद है। उदाहरणार्थ आर्य समाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती, जो स्वयं एक बहुतबड़े योगी भी थे, चक्रों की सत्ता को ही अस्वीकार करते हैं। कहा जाता है कि उन्होंने नदी में बहते हुए एक मुर्दे को पकड़ कर शल्यक्रिया करके चक्रों की स्थिति को देखना चाहा, किन्तु उन्हें इसमें निराश ही हाथ लगी। शरीर विज्ञान के आचार्य भी योग परम्परा में वर्णित चक्रों की सत्ता और उनके स्वरूप विवरण को भी स्वीकार नहीं करते। तथापि साधक परम्परा में इनकी सत्ता को इनके विशिट स्वरूपों को स्वीकार करते हुए इनके ध्यान की तथा इनमें चित्तलय की बड़ी महिमा स्वीकार की गयी है।

वस्तुतः इन चक्रों की मेरुदण्ड के अन्तर्गत मूलाधार से सहस्रार तक, दूसरे शब्दों में मेरुदण्ड के सबसे निचले भाग से आरम्भ होकर उसके उच्चतम भाग से भी ऊपर मस्तिष्क तक सुषुम्ना नाड़ी में स्थिति योगियों की परम्परा और चिकित्सा शास्त्र दोनों में स्वीकार की जाती है। यह सुषुम्ना नाड़ी चेतना का केन्द्र है। जहां मस्तिष्क अनन्त ज्ञान कोशों के गुच्छक के रूप में स्वीकार किया जाता है, वहीं अनेकानेक चेतना केन्द्रों को भी सुषुम्ना नाड़ी में (मेरुदण्ड के मध्य भाग में) चिकित्सा विज्ञान स्वीकार करता है। इस स्थिति में इन चक्रों को चेतना के विविध केन्द्रों के रूप में स्वीकार करने पर चिकित्सा विज्ञान और योगिपरम्परा के बीच किसी प्रकार प्रकार का मतभेद नहीं रह जाता। अतः यह निर्विवाद रूप से स्वीकर किया जा सकता है कि चिकित्सा विज्ञानियों द्वारा मेरुदण्ड के मध्यवर्ती सुषुम्ना नाड़ी में स्वीकृत चेतना के केन्द्र ही योगिपरम्परा में स्वीकृत चक्र हैं। ये चेतना के केन्द्र अनेकानेक ऊतकों से युक्त है, निम्न भाग में स्थित केन्द्रों की अपेक्षा उच्च उच्चतर और उच्चतम भागों में स्थित केन्द्र अधिकाधिक शक्ति शाली हैं। उनकी ग्रहणक्षमता उत्तरोत्तर अधिक है और सूक्ष्म है, इसमें किसी प्रकार का विवाद नहीं है। इन्हीं चेतना केन्द्रों के स्वरूप और शक्ति को योगिपरम्परा में विविध प्रतीकों के माध्यम से वर्णित किया गया है। अतः इन चक्रों के दल (पत्ते) और उन पर स्वीकार किये जाने वाले बीजाक्षरों को ग्रहण और प्रेरक शक्ति की सूचना देने वाले प्रतीकों के रूप में ही स्वीकार करना चाहिए। स्मरणीय है कि योग की एक शाखा तन्त्र में पृथिवी आदि तत्त्वों के प्रतीक के रूप में एक एक अक्षर को बीजाक्षर के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिसका विस्तृत विवरण तन्त्र शाखा में ही द्रष्टव्य है।

योगि परम्परा में यद्यपि चक्रों की संख्या के सम्बन्ध में कुछ मतभेद भी है तथापि

निम्नलिखित चक्रों में उनके स्वरूप विवरण के साथ निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता है। ये चक्र :—(१) मूलाधार चक्र, (२) स्वाधिष्ठान चक्र, (३) मणिपूर चक्र, (४) अनाहत चक्र या हृदय चक्र, (५) विशुद्ध चक्र या कण्ठ चक्र, (६) आज्ञा चक्र या भ्रू चक्र, (७) सहस्रार चक्र या सहस्र दल कमल। इन सात चक्रों में सामान्यतः प्रथम छः को अर्थात् मूलाधार से आज्ञा चक्र तक को 'चक्र' नामों से तथा अन्तिम सहस्रार को परम
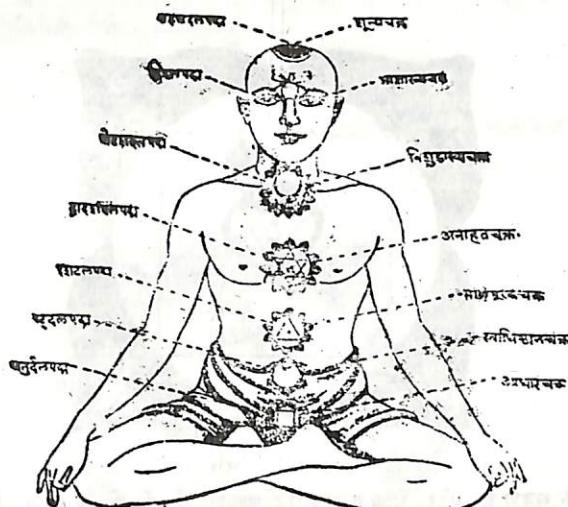
पद शिवस्थान आदि नामों से तन्त्र परम्परा में स्वीकार करते हैं। अर्थात् अन्तिम सहस्रार चक्र को चक्र न कहकर सहस्रदलकमल और शिवस्थान आदि नामों से अभिहित करते हैं।

इनका विशिष्ट विवरण षट् चक्र निरूपण ग्रन्थ में द्रष्टव्य है। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे अंकित है, जिन पर ध्यान करने से ये चक्र जागृत हो जाते हैं अर्थात्—ये विशिष्ट चेतना केन्द्र सम्पूर्ण रूप से क्रियाशील हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप साधक को अद्भुत चेतना शक्ति प्राप्त हो जाती है।

मूलाधार चक्र :—

जैसा कि इस चक्र के नाम से भी स्पष्ट है मूलाधार चक्र समस्त चक्रों के मूल आधार में है। मूल आधार से तात्पर्य है जहां से सुषुम्ना नाड़ी का प्रारम्भ होता हैं अर्थात् योनि स्थान के निकट। यह स्थान गुदा (मल निकलने का मार्ग) के थोड़ा ऊपर लिङ्ग से पीछे है। इस चक्र को आधार चक्र अथवा आधार कमल भी कहते हैं। यह पृथिवी का

स्थान अर्थात् शरीर में स्थित भूलोक स्वीकार किया जाता है। प्राणायाम मन्त्र में प्रथम अंश 'ओम् भूः' का जप अर्थ की भावनापूर्वक इस चक्र (इस चेतना केन्द्र) को जागृत करने, इसको अपनी समग्रशक्तियों के साथ क्रियाशील करने, के लिए ही किया जाता है। इस चक्र में चार दल अर्थात् पंखुड़ियां मानी हैं, जिनका वर्ण रक्त अर्थात् जपा (गुड़हल) के
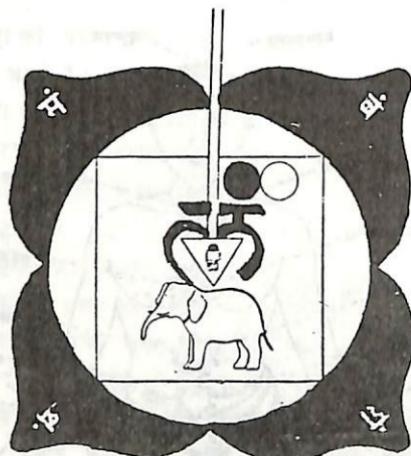
Mūlādhāra the base chakra

फूल के रंग के सदृश है, और प्रत्येक दल पर क्रमशः वँ शँ षँ सँ बीज मन्त्र अंकित हैं, ऐसा स्वीकार किया जाता है। बीज मन्त्र द्वारा इस विशिष्ट चेतना केन्द्र (मूलाधार चक्र) की विशिष्ट ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति की ओर संकेत किया गया है, (जिनकी व्याख्या के लिए स्वतन्त्र लेख की अपेक्षा होगी)। चारों दलों के मिलन स्थल चक्र के मध्य स्थान (कर्णिका) में पृथिवी शक्ति का बोधक लँ बीज मन्त्र अवस्थित है। इसका तात्पर्य यह है कि इस चक्र के मूल में की जाने वाली धारणा पृथिवी धारणा है। जिसके सिद्ध होने पर साधक को पृथिवी अथवा पार्थिव पदार्थों से कोई बाधा नहीं होती। पार्थिव पदार्थ उसकी गति में बाधक नहीं बनते, पृथिवी से उसे चोट आदि की आशंका नहीं रहती, पृथिवी उसकी मृत्यु का कारण नहीं बन सकती। गन्ध इसका गुण है। फलतः दिव्य गन्ध संवित् भी उसे सिद्ध हो जाती है, अर्थात् उसे और उसकी इच्छा मात्र से उसके परिवेश में दिव्यगन्ध का आनन्द पूर्ण अनुभव सर्व साधारण को भी होता है।

इस चक्र के लँ बीज का वाहन ऐरावत हाथी माना गया है। ब्रह्मा इस चक्र का देवता है तथा डाकिनी इसकी देव शक्ति मानी जाती है। इसमें ध्यान हेतु केन्द्र के रूप में चतुष्कोणाकृति यन्त्र की कल्पना की जाती है। इस चक्र का सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रिय घ्राण (नासिका) और कर्मेन्द्रिय गुदा से स्वीकार किया जाता है अर्थात् ये दोनों इन्द्रियां इस चक्र की साधना के फलस्वरूप अपनी सम्पूर्ण शक्ति से कार्य करने लगती हैं, दिव्यगन्ध संवित्, जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है, घ्राण इन्द्रिय की पूर्ण क्रियाशीलता का ही फल है।

भौतिक शरीर की निर्मलता गुदा इन्द्रिय की पूर्ण क्रियाशीलता का परिणाम होता है। इसके अतिरिक्त साधक में मानव मात्र में श्रेष्ठता, अद्भुत वक्तृत्व शक्ति, समस्त विद्याओं और कवित्वशक्ति की प्राप्ति भी मूलाधार चक्र के जागृत होने के फलस्वरूप होती है। शरीर के पूर्ण निर्मल होने के फलस्वरूप पूर्ण आरोग्य और चित्त में आनन्द की अनुभूति भी साधक को निरन्तर प्राप्त होती है। स्मरणीय है कि योग परम्परा में इस चक्र के जागरण को ही ब्रह्मग्रन्थि भेदन भी कहते हैं।

स्वाधिष्ठान चक्र:—

स्वाधिष्ठान चक्र की स्थिति योनि स्थान से कुछ ऊपर और नाभिस्थान के नीचे पेड़ू के पीछे अर्थात् मूलाधार और मणिपूर चक्र के मध्य में स्वीकार की जाती है। यह

Svādhisthāṇa chakra below the navel

स्थान जल का स्थान माना जाता है। शरीर में भुवः लोक की स्थिति यहीं स्वीकार की गयी है। प्राणायाम मन्त्र के द्वितीय अंश 'ओम् भुवः' का जप और अर्थ की भावना इस चक्र को जागृत करने के लिए ही की जाती है। इसके जागृत होने से इस चेतना केन्द्र के सभी ऊतक पूर्ण क्रियाशील हो जाते हैं। इस चक्र (चेतना केन्द्र) को षट्कोण (छ कोणों वाली आकृति का) और सिन्दूर वर्ण वाला माना गया है। इसके प्रत्येक दल (पंखुड़ी) पर क्रमशः बँ भँ मँ यँ रँ और लँ बीज मन्त्र अंकित है यह स्वीकार किया जाता है। ये सभी बीज इस चेतना केन्द्र (चक्र) की विविध, किन्तु प्रमुख ज्ञान और क्रियाशक्ति के प्रतीक हैं। कर्णिका (चक्र के केन्द्र स्थल) में वँ बीज माना जाता है। वँ बीज जल तत्त्व का बीज मन्त्र है। इसलिए चक्र में धारणा को ही जल धारणा भी कहते हैं। इसके (जल धारणा के) सिद्ध होने पर साधक को जल से किसी प्रकार की बाधा नहीं हो पाती, न तो जल की शीतता साधक को कष्ट कर होती है, न जल उसे गीला कर सकता है, और न गला सड़ा

सकता है, न उसे उसमें डूबने से ही कोई हानि की सम्भावना रहती है, जल उसकी मृत्यु का भी कारण नहीं बन सकता। रस जल का प्रधान गुण है, अतः जल धारणा सिद्ध होने पर अर्थात् स्वाधिष्ठान चक्र के जागृत होने पर साधक को दिव्य रस संवित् भी सिद्ध हो जाती है, अर्थात् उसकी इच्छा मात्र से उसे दिव्य रसों के आस्वाद के आनन्द का अनुभव होता है। उसकी कृपा से सर्वसाधारण भी दिव्य रसों के आस्वाद का अनुभव कर सकते हैं।

इस चक्र का तत्त्वबीज वँ है, जलतत्त्व का वाहन मकर स्वीकार किया गया है। विष्णु इस चक्र का देवता है और डाकिनी उसकी शक्ति का नाम है। इस चक्र के अन्दर यन्त्र की कल्पना चन्द्राकार रूप में की गई है। इसका सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रिय रसना और कर्मेन्द्रिय लिङ्ग (उपस्थ) से माना जाता है। अर्थात् इस चक्र की साधना के फलस्वरूप उपर्युक्त दोनों इन्द्रियां (रसना और उपस्थ) अपनी सम्पूर्ण शक्ति को प्राप्त कर लेती हैं। दिव्य रस संवित् तो रसना की पूर्ण क्रियाशीलता का ही परिणाम है, जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है। उपस्थ की पूर्ण शक्ति सम्पन्नता के फलस्वरूप साधक ऊर्ध्वरेता हो जाता है।

इसके अतिरिक्त स्वाधिष्ठान चक्र के जागरण का फल अहंकार आदि विकारों की पूर्ण निवृत्ति, मोह का नाश तथा अपूर्व कवित्व शक्ति की प्राप्ति भी है, जिसके फलस्वरूप साधक इच्छानुसार किसी भी भाषा में गद्य-पद्य रचना में समर्थ हो जाता है। इस प्रकार उसे अनेक साधक योगियों के मध्य स्वतः श्रेष्ठता प्राप्त हो जाती है। अहंकार और मोह आदि संकीर्ण मनोभावों की पूर्ण निवृत्ति के कारण वह मन के समस्त विकारों से रहित होकर पूर्ण सन्तृप्ति का अनुभव करता है।

मणिपूर चक्र

मणिपूर चक्र की स्थिति नाभि के निकट मेरुदण्ड में है। सूत्र में जिस प्रकार मणियां गुथी होती हैं, उसी प्रकार समस्त नाड़ी चक्र इस पर गुम्फित रहता है, इसीलिए इस चक्र को मणिपूर नाम दिया गया है। यह स्थान अग्नि का स्थान माना जाता है। शरीर में स्वर् लोक की स्थिति भी यहीं मानी गयी है। इसीलिए प्राणायाम मन्त्र के एक अंश 'ओम् स्वः' का जप और उसके अर्थ की भावना इस चक्र को जागृत करनेके लिए की जाती है। इस चक्र के जागृत होने पर इस चेतना केन्द्र के सभी ऊतक पूर्ण क्रियाशील हो जाते हैं। इन चेतना केन्द्रों (चक्र) में पूर्व चक्रों की अपेक्षा उत्तरोत्तर ऊतकों के गुच्छक अधिक हैं, फलतः उत्तरोत्तर चक्रों के दलों की संख्या में भी वृद्धि होती गयी है। इस चक्र में दस दल माने जाते हैं, जिनका वर्ण नीला स्वीकार किया जाता है। प्रत्येक दल में क्रमशः डँ ढँ णँ तँ थँ दँ धँ नँ पँ फँ बीजमन्त्र माने गए हैं। अग्नि इस चक्र का प्रधान तत्त्व है, अतः अग्नि का बीज मन्त्र रँ चक्र के मध्य (कर्णिका) में माना जाता है। इस अग्नि तत्त्व का वाहन मेष और इस स्थान का देवता वृद्ध रुद्र स्वीकार किया जाता है, लाकिनी उसकी विशेष शक्ति का नाम है। प्रत्येक दल में स्वीकृत बीजमन्त्र इस चक्र अर्थात् ज्ञान

और क्रिया के मूल चेतना केन्द्र के अंश विशेष के प्रतीक हैं। इस चक्र के यन्त्र की आकृति त्रिकोण है। रूप इस चक्र (चेतना केन्द्र) का विशेष गुण है। ज्ञानेन्द्रिय नेत्र एवं कर्मेन्द्रिय चरणों से इस चक्र का विशेष सम्बन्ध है। फलतः इस चक्र के जागृत होने से साधक को दिव्य रूप संवित् की सिद्धि हो जाती है, अर्थात् साधक अपनी इच्छानुसार स्वयं विविध दिव्यरूपों का साक्षात्कार करने लगता है, और उसकी कृपा से अन्य जन भी अद्भुत रूपों का साक्षात्कार करने में समर्थ हो जाते हैं। साथ ही इन दोनों इन्द्रियों (नेत्र एवं चरण) के अतिशय शक्ति सम्पन्न हो जाने के कारण साधक को दूर दृष्टि एवं दूरगमन का सामर्थ्य भी प्राप्त हो जाता है।
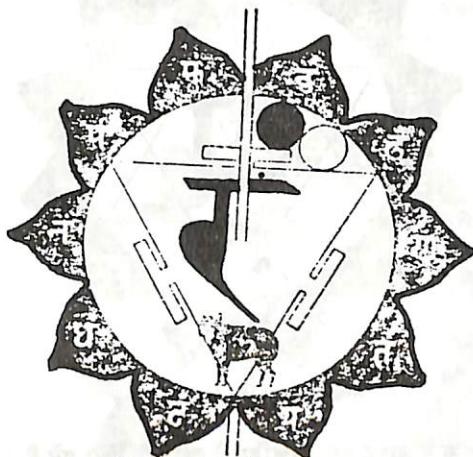
Manipura chakra at the navel centre

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मणिपूर चक्र अग्नि तत्त्व का स्थान है, अतः इस चक्र के जागृत होने से उसे आग्नेय धारणा की सिद्धि हो जाती है फलतः साधक को अग्नितत्त्व पर विजय प्राप्त हो जाती है, वह अग्निकुण्ड में स्थित होकर भी जलता नहीं। बल्कि स्वयं भी अग्नि के समान तेजस्वी हो जाता है। इसके अतिरिक्त साधना ग्रन्थों में इस चक्र के जागृत होने पर साधक वचन रचना प्राप्त चातुर्य कर लेता है और उसकी जिह्वा पर साक्षात्सरस्वती मिवास करने लगती है, ऐसा स्वीकार किया जाता है। इस चक्र के जागृत करने का मुख्य परिणाम यह है कि साधक योगी को सृष्टि की रचना उसका पालन और उसके संहार का सामर्थ्य भी प्राप्त हो जाता है।

अनाहत चक्र :—

अनाहत चक्र की स्थिति हृदय के निकट मानी जाती है। यह स्थान मणिपूर और विशुद्ध चक्र के मध्य में स्थित है। यह स्थान वायु तत्त्व का केन्द्र है ऐसा स्वीकार किया जाता है। शरीर में महः लोक की स्थिति भी यहीं है। इस तत्त्व का प्रधान गुण स्पर्श

है। त्वचा और हाथ इस चक्र से सम्बन्धित क्रमशः ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय है। प्राणा-याम मन्त्र में 'ओम् महः' अंश का अर्थ की भावना के साथ जप करते हुए प्राणायाम की साधना इस चक्र को जागृत करने के लिए की जाती है। वायवी धारणा भी इस स्थान पर सम्पन्न होती है। यहां धारणा करने से ही साधक को अनाहत नाद की अनुभूति होती है, इसलिए इस स्थान पर स्थित चक्र (चेतना केन्द्र) को अनाहत चक्र कहा जाता है। विष्णु ग्रन्थि भी यहीं है, जिसका भेदन इस चक्र के जागरण द्वारा होता है।
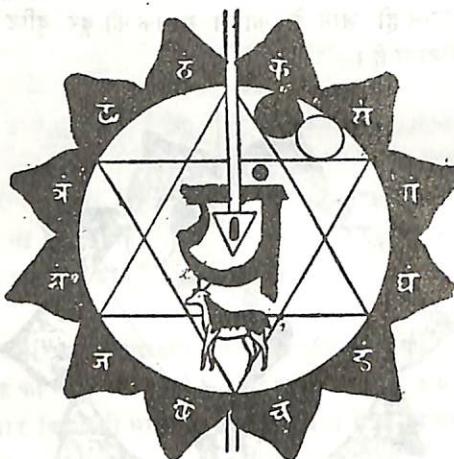
Anahata at the heart centre

अनाहत चक्र में बारह दल (पंखुड़ियां) स्वीकार किए गये हैं, जिनमें एकैकशः कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ टँ और ठँ बीजाक्षर स्वीकार किये जाते हैं, इन बारह दलों के मध्य कर्णिका में वायु तत्त्व का बीज मन्त्र यँ अंकित किया जाता है। इस चक्र का वर्ण अरुण (उगते हुए सूर्य का रंग) माना गया है। बीज का वाहन मृग है। इस चक्र (चेतना केन्द्र) का देवता ईशान रुद्र तथा काकिनी उसकी शक्ति मानी जाती हैं। इसके यन्त्र का स्वरूप षट्कोण बनाया जाता है।

योग के प्राचीन ग्रन्थों में यह स्वीकार किया गया है कि इस चक्र में प्राण और मन को पहुंचा देने से वायवी धारणा की सिद्धि योगी को मिल जाती है। जिसके फलस्व-रूप समस्त वायु तत्त्व योगी के वश में हो जाता है। वायु का आघात अथवा वायु की न्यूनता का कोई प्रभाव योगी पर नहीं पड़ता। वायु तत्त्व पर विजय के कारण ही प्राण वायु उसके वश में इस प्रकार हो जाता है कि वह अपनी इच्छानुसार अपने शरीर से प्राणों को निकाल कर दूसरे शरीर में प्रवेश करने में समर्थ हो जाता है, अथवा प्राणों का विस्तार करके सौभरि की तरह निर्माण चित्तों का निर्माण करके अनेक शरीरों को धारण कर सकता है। ईशित्व और वशित्व सिद्धियां भी उसे प्राप्त हो जाती हैं। समस्त ज्ञान और काव्य रचना का चातुर्य भी उसे अनायास प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त अना-

हत नाद की अनुभूति से समाधि की सिद्धि भी योगी को हो जाती है।

विशुद्धचक्र

विशुद्ध चक्र का स्थान कण्ठकूप है। अनाहत और आज्ञा चक्र के मध्य यह स्थान है। कण्ठकूप को आकाश तत्त्व का केन्द्र माना जाता है। शरीर में 'जनः' लोक की प्रतिष्ठा यहीं स्वीकार की जाती है। आकाश तत्त्व का प्रधान गुण 'शब्द' का उत्पत्ति स्थान भी कण्ठ ही है। श्रोत्र ज्ञानेन्द्रिय एवं वाक् कर्मेन्द्रिय का सम्बन्ध इस आकाश तत्त्व से है। इस तत्त्व को, चेतना के शक्तिशाली इस केन्द्र-विशुद्धचक्र को, जागृत करने के लिए ही प्राणायाम मन्त्र के 'ओम् जनः' इस अंश का अर्थ भावना पूर्वक जप किया जाता है। आकाश धारणा की साधना भी यहीं सम्पन्न की जाती है। इस आकाश धारणा के
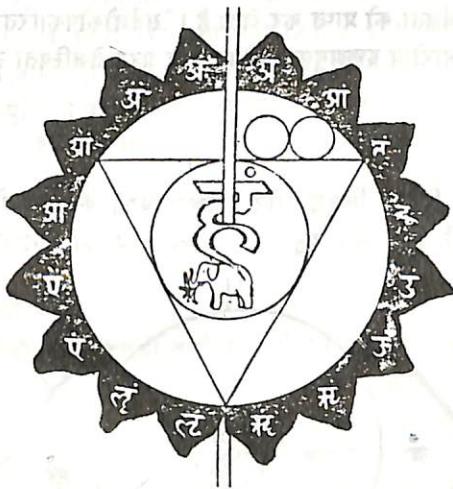
Viśuddha chakra at the throat centre

होने पर दूर-से-दूर स्थान में अथवा पूर्व से पूर्व काल में उत्पन्न शब्दों को योगी सुन सकता है और आकाश की अनन्त सीमा के अन्दर वह स्वच्छन्द विचरण कर लेता है।

इस चक्र में सोलह दल हैं, यह संख्या अब तक वर्णित चक्रों के दलों की संख्या से सर्वाधिक है। इसका तात्पर्य यह है कि पूर्व वर्णित चक्रों की अपेक्षा यह सबसे बड़ा चेतना केन्द्र है। इस चक्र के सोलह दलों में क्रमशः अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ लृँ लॄँ एँ ऐँ ओँ औँ अँ अँः बीजाक्षर अंकित किये जाते हैं, तथा कर्णिका में आकाश तत्त्व का बीज हँ माना जाता है। आकाश तत्त्व का अधिष्ठान होने से इसके यन्त्र की रचना शून्य चक्र के रूप में की जाती है। इस चक्र के दलों का रंग धूम्र वर्ण माना गया है। इस चक्र के बीज का वाहन हाथी माना जाता है। पञ्च वक्त्र रुद्र इस चक्र का देवता है तथा शाकिनी उसकी शक्ति है।

इस चक्र के जागरण से साधक की अनन्त मूल शक्तियां जागृत हो जाती है, स्वरों को वीज मन्त्र स्वीकार करते हुए इसी रहस्य की ओर संकेत किया गया है। जिस प्रकार स्वर वर्ण अन्य सभी बीज मन्त्रों के मूल में अवश्य विद्यमान रहते हैं, आकाश सभी तत्त्वों के अन्तर्गत व्यापक रहता है उसीप्रकार सभी प्रकार की शक्तियों और चेतनाओं के मूल में भी इस चक्र की शक्तियाँ केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित रहती है। काव्यरचना अथवा वचन रचना चातुर्य, जिसकी चर्चा अन्य चक्रों के जागरण के क्रम में की गयी है, उसका मूल भी आकाश तत्त्व का विशेष क्रियाशील होना है। आकाश धारणा के सिद्ध होने पर अर्थात् इस चक्र के जागृत होने पर योगी का चित्त आकाश के समान ही पूर्ण शान्त, भावनाओं की विविध तरङ्गों के विकारों से रहित पूर्ण शान्त हो जाता है, जहां तक आकाश की व्यापकता है, वहां तक योगी की ज्ञान की सीमा विस्तृत हो जाती है अर्थात् साधक सर्वज्ञता को प्राप्त कर लेता है। सर्वलोकोपकारिता योगी का स्वभाव हो जाता है। पूर्ण आरोग्य इच्छानुसार जीवन और परम तेजस्विता उसके सहज धर्म बन बन जाते हैं।

आज्ञाचक्र

आज्ञाचक्र की स्थिति विशुद्ध और सहस्रार चक्रों के मध्य दोनों भौहों (भ्रू) के बीच में स्वीकार की जाती है। यह स्थान महत् तत्त्व का केन्द्र है। महत्तत्त्व प्रकृति
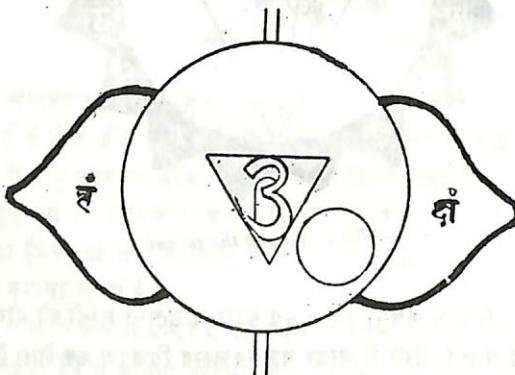
ajna ch...a between the eyebrows

का साक्षात् विकार है। शेष सभी तत्त्व अहंकार पांच तन्मात्राएं ज्ञानेन्द्रियां कर्मेन्द्रियां उभयेन्द्रिय मन, और पांच महाभूत सभी इसके ही विकार हैं। इनमें अहंकार साक्षात् विकार है तथा अहंकार के विकार तन्मात्राएं और सभी इन्द्रियां हैं, पांचों महाभूत पांच तन्मात्राओं के विकार हैं। इस प्रकार महत् ही इन सभी की प्रकृति है, मूल तत्त्व है। आचार्य कपिल ने मन को महत्तत्त्व से अभिन्न माना है। [महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः। सांख्यसूत्र १.७१] इसका तात्पर्य है कि महत्तत्त्व का मन से अभिन्न सम्बन्ध है। फलतः

इस चक्र के जागरण के लिए महत्तत्त्व पर धारणा करनी चाहिए। इस चक्र पर धारणा करने से साधक का मन पूर्ण शक्ति सम्पन्न हो जाता है। मन उभय इन्द्रिय है अर्थात् पांचों ज्ञानेन्द्रियों और पांचों कर्मेन्द्रियों का अधिष्ठाता है। ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति का सम्पूर्ण नियमन मन के द्वारा ही होता है। यह एक ऐसा चेतना केन्द्र है, जहां से समस्त ज्ञान चेतना एवं क्रियात्मक चेतना का समग्र रूप से संचालन होता है, इसी कारण इस चक्र (चेतना केन्द्र) में केवल दो ही दल माने गये हैं। ये दो दल (पंखुड़ियां) एक एक करके ज्ञान शक्ति एवं क्रिया शक्ति की चेतना के प्रतीक हैं।

प्राणायाम मन्त्र के 'ओम् तपः' अंश का अर्थ की भावना के साथ जप इस चक्र को (चेतना केन्द्र को) जागृत करने के लिए किया जाता है। इसके जागृत होने से सम्पूर्ण ज्ञान शक्ति और सम्पूर्ण क्रिया शक्ति जागृत हो जाती है। फलस्वरूप साधक योगी सर्वज्ञ हो जाता है, उसके लिए कुछ भी ज्ञातव्य शेष नहीं रहता। इसी प्रकार उसकी क्रिया-शक्ति भी सम्पूर्ण रूप से जागृत हो जाती है, फलतः वह सर्वशक्तिमान् हो जाता है। दोनों प्रकार की शक्तियों की दृष्टि से वह परमेश्वर के लगभग सदृश हो जाता है। क्योंकि इस चक्र का तत्त्व महत् है और वही समस्त विश्व के तत्त्वों का मूल है, अतः उसकी धारणा से सम्पूर्ण प्रकृति उसके वश में हो जाती है। इस प्रकार इस चक्र के जागरण द्वारा अनन्त शक्ति सम्पन्न हो जाने पर साधक की रुद्रग्रन्थि का भेदन हो जाता है। जिसके बाद उसकी प्राण शक्ति (कुण्डलिनी) और मन सहस्रार पद्म में पहुंच जाते हैं इस स्थिति को परम पद कहते हैं।

आज्ञा चक्र में दो दल हैं इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। इन दोनों दलों में हँ एवं क्षँ बीजाक्षर माने जाते हैं, जो क्रमशः ज्ञानशक्ति और इच्छाशक्ति के प्रतीक हैं। ॐ महत्तत्व का बीजाक्षर है, जिसे कर्णिका में अंकित मानना चाहिए। ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में इसके यन्त्र की कल्पना की जाती है। अर्थात् इस चक्र के जागरण हेतु आज्ञाचक्र में ज्योतिर्लिंग के स्वरूप में साधक ध्यान करता है। इसके बीज का वाहन नाद है, जिसे दर्शन शास्त्र में शब्द ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है।

इससे पूर्व के चक्रों में क्रमशः पृथिवी जल अग्नि वायु और आकाश तत्त्वों में धारणा की गयी थी। अर्थात् क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम तत्त्वों पर प्राणशक्ति और मन को स्थिर करने का (धारणा करने का) अभ्यास किया गया था। भूतों में सूक्ष्मतम आकाश है, शब्द ही उसका गुण है, उसमें धारणा सिद्ध हो जाने पर मन और प्राण स्थिर हो गये हैं ऐसा कहा जा सकता है, अतः इस चक्र में धारणा का नहीं ध्यान का अभ्यास किया जाता है, जो धारणा से उच्चतर स्थिति है। इस महत्तत्त्व में ध्यान की सिद्धि होने पर अर्थात् विश्व के मूल तत्त्व (सूक्ष्मतम तत्त्व) में चित्त की एकतानता (तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्। यो० सू० ३.२) अर्थात् ध्यान के सिद्ध होने पर रुद्र-ग्रन्थि का भेदन हो जाता है और प्राण तथा मन सुषुम्ना महापथ के सर्वोच्च स्थान पर पहुंच जाते हैं, जिसे सहस्रार पद्म, सहस्रदल कमल और परम पद कहते हैं। यह स्थल

समग्र चेतना का मूल है, अतः इस स्थान में कोई तरङ्ग नहीं है, निस्तरङ्ग प्रशान्त अगाध समुद्र की भांति यहां परम शान्ति है। इस स्थिति में पहुंचने पर साधक को कुछ करने की आवश्यकता नहीं होती, वह उसकी समाधि की स्थिति होती है। तात्पर्य यह है कि आज्ञाचक्र के जागृत होते ही साधक समाधि की स्थिति में पहुच जाता है। इस स्थिति में पहुंच कर उसे कुछ करने की अपेक्षा नहीं रहती। आवश्यकता होती है तल्लीनता की जिससे विक्षेप उसे न खींच सकें। यहीं योगी परम आनन्द के अनुभव में
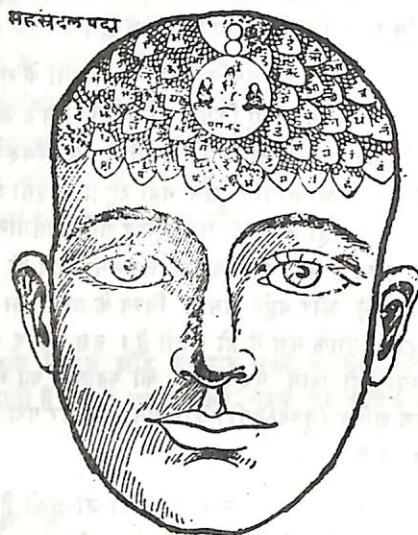
मग्न हो जाता है, लीन हो जाता है, दूसरे शब्दों में ब्रह्म की अभेदावस्था को प्राप्त कर लेता है, ब्रह्ममय हो जाता है।

स्मरणीय है कि चक्रों की संख्या करते हुए उनके नामों का परिगणन करते समय सात चक्रों के नाम लिये जाते हैं—(१) मूलाधार, (२ स्वाधिष्ठान, (३) मणिपूर, (४) अनाहत, (५) विशुद्धि, (६) आज्ञाचक्र और (७) सहस्रार चक्र। किन्तु साधना के क्रम में केवल छ चक्रों की साधना की विधि का वर्णन होता है। इस का कारण यह है कि आज्ञाचक्र के जागृत होने के बाद योगी को साधना की आवश्यकता नहीं रह जाती अब वह साधक नहीं रहता सिद्ध हो जाता है। सिद्ध ही नहीं परमसिद्ध। उसे न किसी साधना की अपेक्षा रहती है और न विश्व के किसी भौतिक अभौतिक स्थूल अथवा सूक्ष्म पदार्थ की अपेक्षा लेती है। वह ब्रह्म से अद्वैतभाव को प्राप्त हो जाता हैं। यही स्थिति समस्त साधनाओं से प्राप्त होने वाली अन्तिम स्थिति हैं। परम सिद्ध अवस्था है। इसे ही बौद्ध परम्परा में ब्रह्म बिहार शब्द से साधना को सर्वोच्च सिद्धि के रूप में स्मरण किया गया है।

कुण्डलिनी : एक जीवन्त अनुभव

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मेरी अवस्था जब छः वर्ष की थी, प्रायः उसी समय से मुझे अनेक आध्यात्मिक अनुभूतियां हुआ करती थीं। एक बार ऐसा हुआ कि मैं अपनी शारीरिक चेतना को बिल्कुल खो बैठा। यह अवस्था कुछ मिनटों तक कायम रही। इसीतरह फिर जब मैं १० वर्ष का था, तो कुछ विचित्र आन्तरिक अनुभूतियां हुईं। इस समय मुझे पहले की अपेक्षा कुछ अधिक सोचने-समझने की शक्ति आ गई थी, अतः मैंने अपनी मनोदशा पिताजी को बतलायी। वे मेरी आन्तरिक अनुभूति एवं स्थिति को पूरा-पूरा समझ नहीं सके। वे मुझे किसी चिकित्सक के पास ले जाना थे परन्तु उस शहर में वैसा कोई वैद्य या चिकित्सक नहीं था। यह मेरे कल्याण के लिए अच्छा ही हुआ अन्यथा मुझे अनावश्यक किसी मानसिक चिकित्सालय में सड़ना पडता। खैर, मेरी हालत ज्यों-की-त्यों बनी रही।

मेरे पिताजी की वेद-शास्त्रों, महात्माओं और गुरुजनों में काफी श्रद्धा थी। एक बार मेरे शहर में एक महात्मा जी का शुभागमन हुआ। वे महात्मा जी पिताजी के आध्यात्मिक गुरु थे। वे मुझे उनके पास ले गये और मेरे बारे में उनसे पूछा। प्रत्युत्तर में गुरुजी ने मेरी पीठ थपथपाते हुए कहा—"ठीक है, ठीक है, भगवान का भजन करो। इसे आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा दो। तुम्हारा लड़का आगे चलकर संत बनेगा। मुझको भी ऐसे अनुभव बचपन में हुआ करते थे।" मेरे पिताजी ने उनकी आज्ञा का पालन किया और उनके आदेशानुसार मुझे आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा देनी आरम्भ की।

मैं हिन्दू परिवार में पैदा हुआ था। आप सबको मालूम ही है कि हिन्दूधर्म कितना व्यापक और उदार है। उसमें साकार और निराकार दोनों प्रकार की उपासनायें बतलायी गयी हैं। हमारा परिवार आर्यसमाजी था, जहां निराकार उपासना को महत्त्व दिया जाता था। फिर भी हिन्दू धर्म के अन्य देवी-देवताओं के चित्रों और मूर्तियों को मैं देखा करता था। उन्हें देखकर मेरे मन में अनेक प्रकार के प्रश्न उठा करते थे। जैसे दुर्गा सिंह की सवारी क्यों करती है? सरस्वती हंस पर क्यों बैठती हैं? विष्णु भगवान शेषनाग पर क्यों सोते हैं? काली अपने रौद्र रूप में शिव के ऊपर क्यों सवार हैं? तारा मां क्यों खुले रूप से भगवान् शिव को स्तनपान करा रही हैं? इन सब विचित्र घटनाओं को देखकर उनका रहस्य समझ नहीं सकता था। आखिर क्या रहस्य है कि भगवान् शिव की सवारी

वृषभ है। उनके गले में सर्पों की माला है और उनके सिर से गंगा की धारा प्रवाहित हो रही है। गणेश जी को हाथी का सिर है। इनका इतना बड़ा पेट और चूहे का वाहन, कितनी विचित्र बात है ! मैं इन सभी विचित्रताओं को स्वत: समझने में असमर्थ था और किसी से उनका सन्तोषजनक समाधान भी नहीं मिल पाता था। परन्तु आगे चलकर जब मेरी उम्र १९ साल की हुई तो कुण्डलिनी योग को थोड़ा-बहुत समझना शुरू किया। तब इन विचित्रताओं का रहस्य मेरे मन में स्पष्ट होने लगा एवं अपनी शंकाओं का समाधान भी होना शुरू हुआ।

इन्हीं सब परिस्थितियों के बीच मुझे अचानक एक दिन एक विचित्र अनुभूति हुई। मैं कहीं एकान्त में चुपचाप बैठा था, अचानक मेरा मन अन्तर्मुख होने लगा। भौतिक चेतना से ऊपर उठकर मैंने एक अजीब दृश्य देखा। वह दृश्य था कि "मैं धरती से ऊपर हूं, समस्त पृथ्वी, महाद्वीप और महासागर, पर्वत और नगर बन्द आंखों में दिखलाई पड़ने लगे। देखते ही देखते एकाएक वे दो टुकड़ों में विभक्त हो गये।" मैं इस दृश्य का रहस्य समझ नहीं सका। मुझे इसका रहस्य तब समझ में आया जब कुछ ही दिनों में दूसरा विश्व युद्ध शुरू हुआ। परन्तु इसे देखकर मुझे जैसे साधारण गांव के निवासी को भविष्य की सम्भावी घटनाओं की झलक एक प्रतीक के रूप में कैसे दिखाई पड़ सकती थी? इन सब चीजों को मैंने न पहले कभी पढ़ा था और न किसी से सुना ही था। इस अप्रत्याशित आन्तरिक घटना को समझने और अनुभव करने का यह मेरा पहला अवसर था।

मैं जब १७ साल के करीब हुआ तो मेरे मन में अनेकानेक प्रश्न पैदा होते थे जिनका समाधान मुझे किसी से नहीं मिलता था। मैं जानता था कि इन्द्रियजनित अनुभवों और इन्द्रियातीत आन्तरिक अनुभूतियों में क्या अन्तर है। बहुत से विषयों के बारे में मैं समाधान के लिए अपने मामा और बहन से पूछा करता था। परन्तु इन सब रहस्यात्मक चीजों को जानने-समझने की जिज्ञासाएं एवं ज्ञान-पिपासाएं दिनों-दिन बढ़ती ही गयीं। मुझे ऐसा लगने लगा—सत्य, ज्ञान और शान्ति की खोज में घर-बार छोडकर मुझे बाहर निकलना पड़ेगा। मैंने अपने पिताजी तथा घर के अन्य लोगों की अनुमति चाही। मैं तब तक प्रतीक्षा करता रहा, जब तक मेरे पिताजी ने मुझे १० रुपये देकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आगे बढ़ने की अनुमति न दे दी। इस तरह मैं अपने घर के लोगों की अनुमति लेकर आगे बढ़ा।

चलते-चलते मैं राजस्थान की तरफ गया। वहां एक आश्रम में एक वृद्ध महात्मा रहते थे। उन्होंने मुझे उस आश्रम में रहने की अनुमति दे दी। उनको तंत्रशास्त्र का बहुत गहरा ज्ञान था। यद्यपि मैं उन्हें अपना गुरु नहीं बना सका, फिर भी उन्हें भूल नहीं सकता। मैं वहां करीब नौ महीने तक रहा। लेकिन मुझे अपनी शंकाओं का समाधान नहीं मिला। मैं पुन: आगे की ओर बढ़ा। संयोगवश ऐसी घटना घटी कि मुझे ऋषिकेश

की ओर जाना पडा । वहां मैंने स्वामी शिवानन्द जी के बारे में सुना । मैं उनके पास गया और अपने अनुभवों को बताया कि किस प्रकार मुझे अचेतनता की अनुभुति हुई थी और उससे आगे बढ़ने का क्या मार्ग है । उन्होंने कहा कि तुम मेरे साथ रहो और सेवा करो, धीरे-धीरे सब कुछ समझ जाओगे । उनके आदेशानुसार तब मेरा आश्रम जीवन प्रारम्भ हुआ । आश्रम जीवन में रहते हुए बहुत समय गुजर गया । कभी-कभी धैर्य भी टूटने लगता था और मैं घबरा जाता था कि आखिर मेरे यहाँ इस प्रकार रहने का क्या प्रयोजन है । सत्य, ज्ञान और समाधि की प्राप्ति हेतु इन दैनिक कर्मों की आवश्यकता ही क्या है ? मेरे मानसपटल में अनेकों प्रश्न बुदबुदों की तरह उभर आते थे । किन्तु मैं आश्रम सेवा में दत्तचित्त था । जीवन और मृत्यु के मध्य अनेकानेक अनुभवों के दौर से गुजरता रहा मैं ।

कभी-कभी गंगा के किनारे बैठे-बैठे जब मैं लौकिक चिन्तन में तल्लीन रहता तो अचानक मेरा मन अन्तर्मुख होने लगता । वहीं एक दिन ऐसा लगा कि धरती अन्दर खिसकती जा रही है, सारा विश्व उस अनन्त आकाश में विलीन होता जा रहा है । अनन्त आकाश, उसकी असीमता और व्यापकता को देखकर मैं हैरान हो उठा । एकाएक मुझे ऐसा लगा कि अणुबम के विस्फोट के सदृश मेरे अन्दर से कोई शक्ति बाहर निकल रही है । उस समय मेरा सारा जीवन स्पन्दित हो रहा था । मुझे परमानन्द की अनुभूति हुई । जीवन के सुखों की जितनी अनुभूतियां हैं, उन सब में वह बढ़-चढ़ कर दिव्य एवं सुखद थी । उस आनन्द की अनुभूति जब प्रकट हुई तो मैं अपने शरीर को एवं सभी बाह्य चेतनाओं को खो बैठा । इस प्रकार की अलौकिक अनुभूति का मेरे जीवन में यह तीसरा मौका था ।

मैं जब कुछ देर पश्चात् सामान्य चेतना में वापस लौटा ता उसके बाद भी कई दिनों तक अपने शरीर और बाह्य जगत् के बारे में बिल्कुल अनभिज्ञ ही रहा । उस समय भी मेरा खाना, पीना और सोना, यहां तक शौच जाना भी हराम हो गया । मुझे पूर्ण आनन्द की बिल्कुल सजीव अनुभूति हुई थी । यह इतनी आह्लादकारी थी कि मुझे डर था कि मैं इधर-उधर जरा-सा भी हिलूं-डिलूं तो यह विलक्षण अनुभूति गायब हो जायेगी । मैं उस अवस्था से कैसे उठ सकता था जब मेरे अन्दर असीम आनन्द की शाश्वत घंटी बज रही हो । एक प्रकार से यह विलक्षण अनुभूति कुण्डलिनी जागरण की थी जिसे मैं बाद में अपने उच्च साधनाक्रम से ठीक-ठीक समझ पाया । उस अवधि में आश्रम के लोगों को मेरी असामान्य स्थिति से असुविधा होती थी । वे समझ नहीं सके कि मुझे क्या हो गया है ? उन दिनों ऋषिकेश में न कोई डाक्टर ही था और न आश्रम के पास इतना पैसा ही था कि मुझे कोई मानसिक चिकित्सा वाले किसी अस्पताल में भेजा जा सके । यह ईश्वर की मेहरबानी ही कहनी चाहिए, मेरे लिए यह अच्छा ही हुआ । करीब एक हफ्ते के बाद मेरी चेतना बिल्कुल सामान्य स्थिति में वापस आ गयी और मैं अपने काम-धाम में पूर्व-

वत् लग गया। उक्त घटना को अच्छी तरह समझने के लिए मैंने योग एवं तंत्र का अध्ययन करना शुरू कर दिया।

मैं शुरू-शुरू में शारीरिक रूप से बहुत कमजोर रहता था। बराबर बीमार पड़ता रहता था। मैंने अपने शरीर की शुद्धि के लिए हठयोग के षट्कर्मों और आसन-प्राणायाम आदि का अभ्यास शुरू किया। इसके फलस्वरूप मुझे आशातीत सफलता मिली। मेरे मन में विचार आने लगे कि वह कौन-सी प्रचण्ड शक्ति है जो मूलाधार में सोई पड़ी है। उसके जगने पर क्या होता है? इत्यादि बातों को जानने-समझने की शृंखलायें मेरे मन में आरम्भ हुईं तथा दिनों-दिन इस विषय में मेरी दिलचस्पी बढ़ती ही गयी।

जब कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है तो वह शक्ति जागृत होकर मेरुदण्ड स्थित सुषुम्ना नाड़ी में जैसे जैसे आगे बढ़ती है वैसे-वैसे उस व्यक्ति के अन्दर प्रसुप्त शक्ति केन्द्र जागृत और क्रियाशील होने लगते हैं।। साधारणतः अब तक जिस गति से मानव मन व चेतना का विकास हुआ है उसका केवल दसवां भाग ही सक्रिय अवस्था में है, शेष भाग अचेतन के गर्भ में सोया पड़ा है। मानव मस्तिष्क के सम्पूर्ण भाग को जागृत होने में हजारों और लाखों वर्ष लग सकते हैं। मस्तिष्क का प्रसुप्त भाग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इनके अन्दर विभिन्न प्रकार की अति मानसिक शक्तियां जैसे अतिश्रवण (अल्ट्रासोनिक), दूरदर्शन विचारसम्प्रेषण (टेलीपैथी) आदि छिपी पड़ी हैं। विभिन्न प्रकार के यौगिक अभ्यासों से यह सम्भव है कि उन प्रसुप्त शक्ति केन्द्रों में जागृति लायी जा सके। उसके लिए बहुत काल तक प्राकृतिक विकास के नियमों पर निर्भर होकर व्यर्थ बैठे रहने की जरूरत नहीं है। बल्कि वर्तमान जीवन में भी यदि तंत्र और योग की साधना प्रक्रियाओं को अपनाया जाय तो अनेकानेक उच्च केन्द्रों में को जागृत किया जा सकता है। तंत्रयोग में कुण्डलिनी जागरण की ऐसी साधनाएं हैं कि जिनके द्वारा मस्तिष्क के उन उच्च शक्तिशाली केन्द्रों को जगाया जा सकता है, जहां से इन सारी चैतन्य शक्तियों का मूल उद्गम शुरू होता है।

इस तरह कहा जा सकता है कि तंत्र और कुण्डलिनी वह सूक्ष्म महाविज्ञान है, जो चेतना के मूल उद्गम का पता लगाकर उसे जागृत करने की प्रक्रियाओं को बतलाता है। तंत्र इस विज्ञान का सैद्धान्तिक पक्ष है और कुण्डलिनी योग इसका व्यावहारिक पक्ष है। तंत्र का अर्थ है (तस्मात् त्रायते इति.तंत्र) चेतनाशक्ति का विस्तार और मुक्ति।

वैज्ञानिकों का कथन है कि पदार्थ के आन्तरिक तत्वों का जब तक विखण्डन, व विभाजन तथा पुनः योग द्वारा सम्मिश्रण नहीं किया जाय तब तक वह पूर्ण शक्ति के रूप में परिणत नहीं होते हैं। भौतिक वस्तुएं मूलतः शक्ति का ही स्थूल रूप हैं।

कुण्डलिनी योग मन से भी सूक्ष्म चेतना के तत्वों को प्रकाशित करता है। इसलिए हमें सबसे पहले मन को समझना है। मन के अन्दर बहुत-सी चीजें हुआ करती

हैं, जैसे अनुभूति, भावनायें, स्मृति, ज्ञान आदि। हम इन चीजों को मन नहीं कह सकते हैं। मन के जितने भी कार्य होते हैं उनका मूलस्रोत चेतना है। चेतन तत्त्व से ही मन का निर्माण हुआ है। ऐसा नहीं हो कि हमारी चेतना शक्ति केवल सांसारिक विषयों में ही फंसी रहे। इसको सीमित जगत की विषयानुभूतियों से ऊपर उठकर विश्वव्यापी चेतना से मेल कराना होगा। इसी की पूर्ति में मानव जन्मों की सार्थकता है। लेकिन जन्म-जन्मांतरों से चले आ रहे अपने सीमित दृष्टिकोण को कैसे हटाया जाये? मन और इन्द्रियों की अनुभूतियों तथा विचारों की सीमा से परे कैसे उठा जाये। इसको समझने के लिए हमें शक्तितत्त्व के मौलिक सिद्धान्त को समझना होगा। इसे एक उदाहरण से अच्छी तरह समझें।

मान लिया एक शहर है। वहां एक मकान है। उस मकान में बिजली के तार सभी कमरे में लगाये जा चुके हैं। बल्ब, पंखा, हीटर, टेलीविजन आदि सभी प्रकार के प्रसाधनों का वहां समुचित प्रबन्ध है। फिर जब उस शहर की बिजली का सम्बन्ध मुख्य विद्युत से जुड़ जाएगा तो सभी विद्युत यन्त्र ठीक से काम करने लगेंगे। इसके अतिरिक्त उस शहर के अन्दर अन्य जितने भी उद्योग-धन्धे वाले कारखाने, दुकानें और व्यापार सम्बन्धी जितने कार्यालय होंगे, सभी अपना काम ठीक से कर सकेंगे। जब तक विद्युत प्रवाह के ऋणात्मक और धनात्मक तार मुख्य शक्ति केन्द्र से जुड़े हैं, तब तक शहर के सभी यन्त्र ठीक से काम कर सकेंगे और बिजली की रोशनी से सारा शहर जगमगाता रहेगा। टेलीविजन, टेलीफोन, कम्प्यूटर आदि सभी यन्त्र समुचित ढंग से परिचालित होंगे।

इसी प्रकार मानव मस्तिष्क के जो भाग निष्क्रिय अवस्था में हैं, उनकी भी यही हालत है। उनका सम्बन्ध शक्ति के मुख्य केन्द्र से नहीं जुड़ा है। इसीलिए चेतना की विस्तृत शक्ति वहां पहुंच नहीं रही है। यह मानव शरीर भी एक छोटा-सा ब्रह्माण्ड ही है। इसके अन्दर सभी प्रकार के गुण, कार्य और शक्तियां विद्यमान हैं, जो अखिल ब्रह्माण्ड में होते हैं। परन्तु उसकी अधिकांश शक्तियां सुषुप्त अवस्था में हैं, जिनका हम उपयोग सामान्य जीवन में नहीं करते। इसका कारण है कि उन छोटे-छोटे केन्द्रों का सम्बन्ध मुख्य केन्द्रों से नहीं है जहां से चारों तरफ चेतना की शक्ति संचारित होती है। अब प्रश्न यह है कि उस अनन्त शक्ति का मुख्य केन्द्र कहां पर है।

तंत्र और कुण्डलिनी शास्त्र के अनुसार शक्ति का मूल केन्द्र है मूलाधार चक्र। जब मूलाधार चक्र का सम्बम्ध मस्तिष्क के मुख्य केन्द्र से जुड़ जाता है तो अनन्त शक्ति का स्रोत सुषुम्ना के मार्ग से प्रवाहित होने लगता है। उस समय मस्तिष्क के जितने केन्द्र हैं, वे चेतना की ज्ञानमयी शक्ति से आलोकित हो उठते हैं। पुरुष शरीर में यह मूलाधार चक्र पेरिनियम के पास मल-मूत्र द्वार के बीच तथा स्त्रियों में यह गर्भाशयग्रीवा (cervix) के ठीक पीछे स्थित है। यह बहुत छोटी-सी ग्रन्थि है। यदि उस पर किसी तरह से दबाव

डाला जाये तो उस पर किसी भी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता है। उसकी शक्ति को जागृत करने के लिए सूक्ष्म यौगिक क्रियाओं द्वारा ही उसे प्रभावित करना होगा। यदि किसी अणु-परमाणु को आप धरती पर यों ही फेंक दें तो क्या होगा? कुछ भी नहीं। जिस प्रकार बम को विस्फोट कराने के लिए डेटोनेटर की जरूरत पड़ती है उसी प्रकार मूलाधार चक्र के अन्दर छिपी हुई शक्ति का विस्फोट करने अर्थात् उसको जागृत करने के लिए डेटोनेटर जैसी कुछ विधियां हैं, उन्हे अपनाना पड़ेगा। जब यह प्रसुप्त शक्ति जागृत हो जाती है तो स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, बिन्दु, और सहस्रार चक्र की सम्पूर्ण शक्तियां जागृत होने पर मनुष्य देवतुल्य अनन्त दिव्य शक्तियों और विभूतियों का स्वामी बन जाता है। इस तरह से कुण्डलिनी शक्ति की जागृति, ऊर्ध्वारोहण एवं उसके परिणामों की परिपुष्टि होती है।

बहुत से लोग कुण्डलिनी योग का नाम सुनकर भयभीत हो उठते हैं—अरे ! बाप रे ! यह तो बहुत खतरनाक चीज है। अरे भाई, आप लोगों ने इसके विषय में बहुत गलत धारणा बना रखी है। वैसे देखिये, तो जीवन में खतरा सर्वत्र हैं और प्रगति के मार्ग में आगे बढ़ने वाले वीर उन्हें रौंदते हुए आगे बढ़ते हैं। इतिहास इसका साक्षी है। वैसे आप देखिये तो भारत से योरप जाने के लिए बहुत से लोग वायुयान का सहारा लेते हैं। उन्हें आठ घंटे तक वायुयान में बैठना पड़ता है। क्या वह खतरा नहीं है? लेकिन जाने वाले यात्री आनन्दपूर्वक बैठते हैं। बड़े-बड़े पर्वतारोही अनन्त खतरों का सामना करते हुए आरोहण का साहस छोड़ते नहीं। एवरेस्ट पर्वत पर जो विजय हासिल की गयी, वह जान को जोखिम में डालकर ही मिली। मानव ने हाइड्रोजन और अणुबम बनाये हैं, क्या वे खतरे से पूर्ण नहीं हैं? हमारे सामने सर्वग्राही मौत मुंह बाये हर क्षण खड़ी है। परमात्मा ही जानता है कि वह किस क्षण हमें अपना ग्रास बना लेगी। तो फिर डर किस बात का? इस तरह मृत्यु कितनी खतरनाक चीज है? एक प्रकार से यह जीवात्मा के चिरकालीन कुम्भक की स्थिति है। उसके बाद कौन जानता है हमें पुनः इस मृत्युलोक में, किस योनि में और कब जन्म लेना पड़ेगा।

लोग कुण्डलिनी शक्ति को जगाने में डरते हैं। इसका क्या कारण है? क्योंकि उन्होंने अन्य लोगों से सुना है कि लोग पागल हो जाते है। कहीं उन्हें भी पागलखाने की हवा न खानी पडे, इसलिए वे अकारण डरते हैं। सच पूछिये तो यहीं खतरा है। इस तरह तो जीना दुर्लभ हो जायेगा। फिर शूर-वीरों और बड़े-बड़े महारथियों की तरह खतरे का जोखिम उठायेगा कौन और विजय का झंडा फहरायेगा कौन? विश्व के महान् सेनापति, राजनीतिज्ञ या नवीन स्थानों की खोज करने वाले, साहसिक समुद्रयात्री जो कभी-कभी तीव्र लहरों के प्रवाह में बह जाते हैं, क्या उन्हें जीवन के खतरे और मौत का भय नहीं होता? वे वैज्ञानिक जो हाइड्रोजन और अणुबम आदि का प्रयोग करते हैं, उनका जीवन कितने खतरे में रहता है? यदि वे साहसिक खतरा मोल नहीं लेते, सम्भावित

मृत्यु से भयभीत होकर महान् लक्ष्य और कर्त्तव्यों से विमुख हो जाते, तो ज्ञान-विज्ञान के आविष्कारों के बृहद् क्षेत्र में नये-नये आयामों का उद्घाटन नहीं कर पाते।

यदि हम कुण्डलिनी योग का अभ्यास करते-करते कहीं पागल हो गये तो क्या हो जायेगा? कोई बात नहीं, यदि पागल हो भी गये तो क्या होगा। धीरे-धीरे यह कुण्डलिनी हमारे वश में हो जायेगी। जिस कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने में मनुष्य को कई जन्म और युग व्यतीत करने पड़ते हैं, उसे जगाने में यदि किसी बहुत बड़े खतरे का भी सामना करना पड़े तो इस उपलब्धि की तुलना में कोई भी खतरा नगण्य है और इसे ईश्वर का वरदान ही समझना चाहिए। यदि कुण्डलिनी जागृत हो जाने के भय की वृत्ति बनी रही तो फिर उसे जगाने का प्रयत्न कौन करेगा? अतः अपने अन्दर से कुण्डलिनी जागरण के प्रति भय और असुरक्षा की भावना को निकाल दो भय का होना मानसिक दुर्बलता का लक्षण है। सचमुच में यह है भी। फिर भी वास्तविक खतरा है कि नहीं, इसको स्वयं हम क्यों न आजमायें। यदि जाग गयी तो हम बहुत बड़ी शक्ति के स्वामी बनेंगे, अन्यथा जागृत होने की तैयारी होती रहेगी।

अब तक मानव ने इस भौतिक जगत की अधिकांश शक्तियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। अब उसे अपने अन्तर्जगत की ओर दृष्टिपात करना है। उसे अपनी छिपी हुई अनन्त शक्तियों के उद्गम को जानना और प्रकाशित करना है। इसलिए कुण्डलिनी योग एक बहुत सुन्दर, रोचक और रहस्यात्मक वैज्ञानिक विषय है, जो मनुष्यत्व को देवत्व में परिणत करने की सारी क्षमतायें रखता है। इसका नाम सुनकर आपको डरने की जरूरत नहीं है। अब इस विषय पर अनेकों गवेषणाएं हो चुकी हैं एवं पुस्तकें भी निकल चुकी हैं। इसके जानकार गुरुओं की भी कमी नहीं है। इसलिए आप भी तैयार होइए और अपनी बहुमुखी प्रतिभा के विकास के लिए कुण्डलिनी योग के अभ्यास में तत्पर हो जाइये।

विश्व की आने वाली संस्कृति में कुण्डलिनी जागरण ही मानवता का मुख्य धर्म बनेगा, ऐसा मुझे अन्दर से अभ्यास हो रहा है। यदि आप इस महान्, प्रचण्ड सर्पिणी कुण्डलिनी शक्ति से भय रखते हैं, तो रखें; आगे आने वाली सन्तानें निर्भय होकर इसे जागृत करेंगी, और अतीन्द्रिय चेतना अर्जित करेंगी। हो सकता है, आज से हजारों और लाखों वर्षों के बाद सबकी कुण्डलिनी जन्म से ही जागृत रहे। उस समय महान, सात्त्विक, दैवी, महात्मा और दिव्य स्वभाव वाली आत्माएं ही इस भूमण्डल में अवतरित होंगी।

सर्वोच्च साधना—कुण्डलिनी योग

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

कुण्डलिनी योग का विषय अब भारत तथा विश्व में बहुत ही लोकप्रिय हो चुका है। अतः इसके व्यावहारिक व दार्शनिक ज्ञान एवं स्वरूपको अच्छी तरह इसकी परिभाषा के साथ जान लेना आवश्यक है।

जिस तरह अनंत नाग देवता पृथ्वी को धारण किए हुए हैं, उसी तरह कुण्डलिनी योग के नाग देवता भी पूरे तन्त्र एवं योगशास्त्र के धारक माने जाते हैं। कुण्डलिनी की कल्पना एवं सुषुम्ना के उत्तुंग राजकीय मार्ग से उसके ऊपर चढ़ने की गति को कितने ही रूपों में संसार की धर्म-पुस्तकों, गाथाओं तथा दृष्टान्तों में समझाया गया है।

कुण्डलिनी का एक बहुत सुन्दर दृष्टान्त हनुमानजी की गाथा में है। एक बार हनुमानजी समुद्र के किनारे उगते सूर्य को देख रहे थे। उन्हें भूख लगी और उगते हुए सूर्य को एक सुन्दर बड़ा सा लाल सेब समझकर वे आकाश में उड़ गये और पूरे सूर्य को निगल गये। फलतः तीनों लोकों में अंधेरा छा गया और सारे देवताओं के बीच खलबली मच गई।

पर वस्तुतः हनुमानजी सूर्य को निगल गये, ऐसी बात नहीं है। यह मात्र एक प्रतीकात्मक दृष्टान्त है, जहाँ प्राण-वायु अर्थात् सूर्य नाड़ी को सुषुम्ना में प्रवाहित करने को बताया गया है। यही कुण्डलिनी योग को समझने का गूढ़ रहस्य है और यही कुण्डलिनी योग की तान्त्रिक परम्परा है। तंत्र मार्ग अपनी अनेक सुन्दर यौगिक शाखाओं को लेकर चलता है, जैसे—हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग, आसन, प्राणायाम, क्रियायोग, योगनिद्रा, भक्तियोग इत्यादि तथा इन सभी के ऊपर है कुण्डलिनी योग। तन्त्र का परम लक्ष्य मनुष्यों की चेतना को, मन को, देश एवं काल के परे प्रस्फुटित करना है। मन स्वयं अनेक बन्धनों में बंधा हुआ है, इसके कारण वह समय तथा विषय के बीच सीमित रहता है। तंत्र शब्द दो भावों का समन्वय है—एक विकास एवं दूसरा मुक्ति। इसका लक्ष्य प्रथम चेतना का विकास, तत्पश्चात विषयों के सूक्ष्म बन्धनों से मुक्ति देना है। मनुष्य की चेतना हमेशा प्रस्फुटित होती रहती है, इसका पूर्ण विनाश कभी नहीं होता। शरीर के मर जाने पर भी चेतना की मृत्यु नहीं होती। रोगी शरीर भी इस पर प्रभावकारी नहीं होते। इसी चेतन-विज्ञान का नाम तन्त्र है।

शक्ति के दो पहलू—

गीता में दो सनातन शक्तियों का वर्णन आया हैं—पुरुष एवं प्रकृति। इसी अनादि तथा अनन्त शक्ति पर सारा ब्रह्माण्ड तथा मानव आदि प्राणी स्थित हैं। प्रकृति ही पदार्थ

अथवा समग्रता का प्रकाशन है। पुरुष चेतना का रूप है जो मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार के रूप में अवस्थित है। जब पुरुष एवं प्रकृति का संयोग होता है तभी प्राणियों का आविर्भाव होता है। सदा-सर्वदा से क्रमिक विकास एवं अवतरण की प्रक्रिया में दो तत्त्व साथ-साथ रहे हैं और इनके कारण भी हैं। आज भी हम सभी अपने अलग-अलग अस्तित्व में इन्हीं पदार्थों एवं चेतना के सृजन हैं। इस सृजन की प्रक्रिया में इन दो गुणों का सदा सर्वदा से ऐसा घनिष्ट संयोग रहा है कि एक आम आदमी अपनी साधारण बुद्धि एवं ज्ञान से इन दो शक्तियों को विलग कर अलग-अलग नहीं समझ पाता है। तंत्र के दर्शन एवं अभ्यास का लक्ष्य इन्हीं दो गुणों को विलग कर मन एवं चित्त को अलग-अलग कर जानने का है। इस प्रकार 'योग' का अर्थ 'वियोग' है, जब चेतना मन की उलझन से विलग होकर पुनः योग रूपी संसार का आविर्भाव करती है।

इस पार्थिव शरीर के सूक्ष्म स्तर में जो दो शक्तियां कार्यरत रह रही हैं: वे हैं 'चित्त' एवं 'प्राण'। प्राण अर्थात् जीवन-शक्ति तथा चित्तशक्ति मन के संपूर्ण चेतन, अर्धचेतन एवं अचेतन का स्रोत है। इन दोनों के समन्वय से ही ज्ञान एवं क्रिया फलीभूत होती हैं। ये ही शक्तियां कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, मन एवं चित्त का नियन्त्रण करती हैं। ये दो शक्तियां इस शरीर में मेरुदण्ड के बीच दो नाड़ियों द्वारा प्रभावित होती हैं, जिन्हें हम 'इड़ा' एवं 'पिंगला' कहते हैं। जैसे रेडियम-रश्मि-तरंग ट्रांजिस्टर रेडियों में प्रवाहित होती हैं, पर हम उन्हें देख नहीं सकते, उसी प्रकार मानसिक एवं प्राणिक चेतनायें 'इडा' एवं 'पिंगला' में सूक्ष्म रूप से प्रवाहित होती है, जिन्हें हम शल्य-चिकित्सा द्वारा रीढ़ की हड्डियों को चीर कर नहीं दिखा सकते।

इडा-पिंगला की भूमिका—

इडा बायीं नासिका द्वारा एवं पिंगला दाहिनी नासिका द्वारा प्रवाहित होती है। इडा नाड़ी शीतलता, चन्द्रमा मानसिक शान्ति तथा ब्रह्मज्ञान का द्योतक है और पिंगला उष्णता, सूर्य, शक्ति एवं क्रियाशीलता का द्योतक है। आधुनिक विज्ञान के मतानुसार भी बायीं नासिका का ताप दायीं नासिका के ताप से बहुत कम है और यह तथ्य इस तरह पुरानी यौगिक पद्धति को प्रमाणित करता है। साधारणतया नाड़ी का अर्थ लोग ज्ञान तन्त्र से लगाते हैं: पर योग में इसका अर्थ भिन्न है। नाड़ी शब्द "नाद" से आया है जिसका अर्थ "बहना" होता है। नाड़ी कोई यन्त्र अथवा ज्ञान तन्तु नहीं हैं, जिसे हम पार्थिव शरीर का कोई अंग समझें।

"इडा-नाड़ी" चित्त शक्ति तथा 'पिंगला-नाड़ी' प्राण शक्ति का स्रोत है। प्राण एवं चित्त पूरे शरीर में प्रवाहित होकर अंग-प्रत्यंग की क्रिया-प्रक्रिया, स्पन्दन एवं पूरे स्थूल, सूक्ष्म एवं हैतुक क्रिया समुदायों का नियंत्रण करते हैं। इन दो नाड़ियों का उद्गम स्थान रीढ़ की हड्डी का अधोभाग 'मूलाधार-चक्र' है तथा इसका अन्त-शीर्ष 'आज्ञा-चक्र' है। पुरुषों में यह मूलाधार चक्र मल-द्वार और जननेन्द्रिय के बीच तथा महिलाओं

में गर्भाशय तथा योनि-द्वार के बीच स्थित होता है। मूलाधार चक्र ही महाशक्ति का प्रतीक है। आज्ञाचक्र 'पीनियल-ग्रंथि' के पास रीड़ की हड्डी के शीर्ष पर भ्रूमध्य भाग में अवस्थित है। मूलाधार से पिंगला दायीं तथा इड़ा बायीं ओर से बलखाती हुई, बिना एक दूसरे को स्पर्श किये स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत और विशुद्धि चक्रों को क्रमशः पार करते हुए अन्ततः ऊपर आज्ञाचक्र में पहुंचकर बिलीन हो जाती है।

तन्त्र शास्त्र में कहा गया है कि कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में तमोगुणों से लिपटी अनन्त निद्रा में अनन्तशक्ति लिये सो रही है। इस प्रकार सुषुम्ना के मूल में स्थित कुण्डलिनी को तामसिक शक्ति माना गया है। इसलिए अगर किसी साधक की कुण्डलिनी बिना इड़ा एवं पिंगला को संतुलित किये जागृत हो जाती है तो वह साधक शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक उथल-पुथल से पीड़ित हो सकता है। इस तरह जब हम कुण्डलिनी योग की चर्चा करते हैं, तो इड़ा और पिंगला नाड़ी भी स्वयं में महत्त्व रखती हैं। सारे कर्म, संस्कार, नैराश्य अथवा ईर्ष्या आदि जो भी मन एवं प्राण द्वारा सृजित हैं, सभी इड़ा और पिंगला के प्रवाह में ही सूक्ष्म रूप में अवस्थित हैं। अतः जो अच्छे अथवा बुरे, दुखदायी अथवा सुखदायी संस्कार है, उनका क्षय होने से पहिले सुषुम्ना जागृत हो जाये तो आदमी पूर्णता विक्षिप्त, पागल अथवा विध्वंसक हो सकता है।

ऐसा आवश्यक नहीं है कि आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान की अनुभूतियां सुषुम्ना के जागृत होने पर ही हों। बहुत सारी ऐसी अनुभूतियां हैं जो साधकों को पिंगला की प्राण वायु तथा इड़ा की चेतना से प्राप्त होती हैं। 'हठयोग' स्पष्ट रूप से बतलाता है कि मन एवं प्राणशक्ति के सामंजस्य से ही समाधि प्राप्त होती है। यह सुषुम्ना नाड़ी ही एक मात्र पथ है, जिसमें कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार से निकलकर मेरुदण्ड से होते हुए सीधे ऊपर आज्ञाचक्र में लय हो जाती है।

इडा नाड़ी के प्रवाह काल में मस्तिष्क का दायां भाग क्रियाशील होता है और जब पिंगला क्रियाशील होती है तो मस्तिष्क का बायां भाग काम करने लगता है। सुषुम्ना जागृत होती है तो पूरा मस्तिष्क क्रियाशील हो जाता है। सुषुम्ना की सारी शक्ति जिसे हम कुण्डलिनी के नाम से जानते हैं, मूलाधार में स्थित हैं। इसका प्रवाह किसी अन्य नाड़ी के द्वारा नहीं होता है। जब इड़ा व पिंगला एक साथ प्रवाहित होती है, तब इनका ताप एक समान रहता है तथा प्राण और चेतना का अन्तर टूट जाता है एवं अन्यान्य अवस्थायें भी जब समरूप हो जाती हैं तो कुण्डलिनी स्वयं ही सुषुम्ना नाड़ी से उर्ध्वारोहण कर आज्ञा चक्र पहुंचती हैं। यद्यपि कुण्डलिनी का शाब्दिक अर्थ 'गेंडरी' होता है पर तन्त्र शास्त्र में यह शब्द 'कुण्ड' से आया है। जिसका अर्थ 'गहरे' स्थान से है जैसे 'हवन कुण्ड'। कुण्डलिनी वही महाशक्ति है जो इस प्रकार के गहरे स्थान अर्थात् 'कुण्ड' में विराजमान है जिसे हम 'मूलाधार' कहते हैं।

कुण्डलिनी जागरण में सुषुम्ना का अस्तित्व—

तन्त्रशास्त्र में भक्तियोग से लेकर लययोग तक कुण्डलिनी जागरण के अनेकों नियम हैं तथा आयुर्वेद में अनेक जड़ी-बूटियों तथा रसायनों के प्रयोग का वर्णन आया है। इन सभी का एक मात्र लक्ष्य उस स्वप्न को साकार बनाना है जिसमें शिव तथा 'शक्ति' का संयोग अनन्त में विलीन हो जाता है। इसी असीम सुषुप्त शक्ति को जाग्रत करने के लिए बड़े-बड़े योगी लोग कष्ट सहकर व्रत अनुष्ठान तथा योग का अभ्यास करते हैं। इसी केन्द्र बिन्दु पर सनातन धर्म अवस्थित है। तन्त्र शास्त्र की गलत परिभाषा के कारण लोग इससे भय खाते हैं। यहां तक कि वे इसकी निन्दा भी करते हैं। वे इसे नहीं चाहते, क्योंकि वे इसके विरुद्ध बीभत्स एवं अश्लील धारणा बना बैठे हैं। पर क्या आपको मालूम है? हमारे धर्म, हमारे संस्कृति की उत्पत्ति ही तन्त्र से हुई है। तन्त्र का अद्वितीय विज्ञान ही योगशास्त्र, वेद एवं सनातन धर्म की जननी है। सभी महान तपस्वी साधक, धर्मशास्त्र एवं साधना आदि की उत्पत्ति तंत्र से हुई है। यही सारे पवित्र ज्ञानों में पवित्रतम ज्ञान, परम शान्ति और आनंद का महाविज्ञान है।

धर्म शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि जब सुषुम्ना जागृत अवस्था में हो तो साधक को मात्र ध्यान करना चाहिए, क्योंकि अगर सुषुम्ना की जागृत अवस्था में अन्य कोई कार्य किया जाये तो वह तामसिक होगा, क्योंकि सुषुम्ना तमोगुणी, पिंगला रजोगुणी एवं इड़ा सतोगुणी नाड़ी समूहों से सम्बन्धित है। किसी को भी सुषुम्ना को जागृत करने से पहले कुण्डलिनी जागरण का प्रयास नहीं करना चाहिये। यदि आपके पास मोटर कार है पर आपके घर से जाने को सड़क न हो तो क्या करना चाहिए? उसी प्रकार जब कुण्ड-लिनी शक्ति जागृत हो तो उसके प्रवाह के लिए उचित पथ होना चाहिए। सुषुम्ना के जागृत होने का अभिप्राय ही 'पाताल लोक' का 'स्वर्ग लोक' के साथ सूक्ष्म सम्पर्क स्थापित करना है।

हठयोग से तैयारी —

सुषुम्ना को जागृत करने के पहले हठयोग द्वारा अर्थात् आसन, प्राणायाम मंत्र आदि के अभ्यास से इड़ा एवं पिंगला की शुद्धि कर लेनी आवश्यक है। हर साधक को यह स्पष्ट रूप में समझ लेना चाहिए कि इस महादेवी, महा-आद्याशक्ति को जागृत करने के पूर्व वह एक पूर्ण एवं कुशल कार्यक्रम बना लें और इसका अभ्यास किसी सूक्ष्म-दर्शी योग्य गुरु के निर्देशन में ही करें।

तन्त्र शास्त्र में आया 'हठ' शब्द दो अक्षरों, 'ह' व 'ठ' के मेल से बना है। ये दो अक्षर दो शक्तियों 'प्राण एवं चेतना', शिव एवं शक्ति, सूर्य एवं चन्द्र तथा गंगा एवं यमुना आदि के द्योतक हैं। हठयोग की परिभाषा को देखकर उसे 'पार्थिव योग' समझना भूल है। मैं सभी को अच्छी तरह बता दूं कि 'हठयोग' किसी प्रकार भी पार्थिव अथवा पदार्थवादी विज्ञान नहीं है। यह इस पार्थिव शरीर में स्थित इन दो महान शक्तियों का

गोपनीय ज्ञान है। हठयोग का उद्देश्य मनुष्य में सुषुप्त 'मानवी' चेतना को जागृत करना है। परन्तु यह केवल शारीरिक स्थूल चेतना ही नहीं है। जब मैं अपने गुरुकुल ऋषिकेश में था तो अपने गुरु स्वामी शिवानन्दजी के हस्तलिखित लेखों को टाइप करता था। उनमें अनेक लेख आसनों पर भी थे। मैंने उनसे एक बार पूछा "कि इन आसनों का अभ्यास क्यों आवश्यक है ? जबकि ये मात्र शारीरिक स्वास्थ्य के हेतु हैं। तो उन्होंने कहा—योगाभ्यास शारीरिक व्यायाम नहीं हैं। ये अभ्यास चक्रों को न्यून मात्रा में ऊर्जा देने हेतु किये जाते हैं ताकि जब वे जाग्रत होते हैं तो लोग अचम्भित न हो जायें।

अब हम लोग इसे स्पष्ट रूप में आधुनिक विज्ञान के आलोक में समझ गये। इसी प्रकार प्राणायाम का अर्थ शरीर को अधिक प्राणवायु (ऑक्सीजन) पहुंचाने के लिए गहरी श्वास प्रक्रिया नहीं समझना चाहिए। मात्र ऑक्सीजन ही प्राण-शक्तिदायक नहीं है। मात्र ऑक्सीजन योग के लिए आवश्यक नहीं है, बल्कि प्राणायाम के द्वारा ऑक्सीजन के विखण्डन से जो "ऑक्सीजन आयन" प्राप्त होते हैं वे अमूल्य हैं। उदाहरणार्थ—ऑक्सीजन आयन जिसे हम प्राणशक्ति कहते हैं, अधिक संख्या में नाड़ी शोधन प्राणायाम करने से इड़ा एवं पिंगला नाड़ी के पास अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाते हैं। साधारण श्वास की प्रक्रिया में ऐसा नहीं होता हैं। बारी-बारी से दोनों नासिकाओं द्वारा लगातार श्वास-प्रश्वास लेने से इसका घनत्व और समय अभ्यास के साथ बढ़ता जाता है जो अन्ततः संतुलित होकर सुषुम्ना को जागृत करता है।

कुछ लोग जो संस्कृत से अनभिज्ञ हैं 'प्राणायाम' शब्द का अर्थ श्वास नियंत्रण से लगाते हैं पर ऐसा नहीं है। प्राणायाम दो शब्दों 'प्राण और आयाम' के संयोग से बना है। आयाम का अर्थ 'परिमाण' अथवा विस्तार से होता है। भौतिक शरीर जहां रेडियम रश्मि तरंगों तथा विद्युत चुम्बकीय तरंगों का क्षेत्र है, वहीं प्राणशक्ति का भी क्षेत्र है। हम अपने क्रमिक विकास में इस प्राणशक्ति को अब तक मात्र तीन ही स्वरूप में विस्तृत कर सके हैं—पहला स्थूल, दूसरा सूक्ष्म एवं तीसरा हैतुक, जो हमारे जागरण स्वप्न तथा निद्रा की स्थिति है। पर वास्तव में इस चेतना विकास के सात स्वरूप हैं जिनमें से एक को हम देख सकते हैं, दो को स्पर्श कर सकते तथा शेष चार को न देख सकते और न स्पर्श ही कर सकते हैं। ये सात स्वरूप हैं—भूः, भूवः, स्वः, महः, जनः, तपः एवं सत्यम्। चेतना के सात अधिष्ठान सात चक्रों के अनुरूप हैं। प्राणायाम की आवश्यकता प्राणशक्ति का इन सातों स्वरूपों में संचार कर समाधि तथा इसके भी ऊपर की स्थिति में ले जाने के लिए है।

अगर इन कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों को नियंत्रण करने वाली इस प्राणशक्ति का अपने उद्गम मूलाधार से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया जाये तो कुण्डलिनी जागृत होती है। जब हनुमानजी सूर्य को निगल गये अर्थात् पिंगला नाड़ी में प्राणों का संचार बन्द हो गया, तबहृदय एवं मस्तिष्क की गति भी रुक गई तथा अन्य अंग भी निष्क्रिय हो गये वे

जाग्रत, स्वप्न, निद्रा तीनों अवस्थाओं का अतिक्रमण कर गये जिससे कि तीनों लोकों में अंधियारा छा गया। स्पर्श, स्पन्दन एवं मस्तिष्क की अनुभूति भी रुक गई तो इस स्थिति को बन्ध अर्थात मूलबन्ध, उड्डियान बन्ध तथा जालन्धर-बन्ध द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। जब आप इन बन्धों का अभ्यास प्राणायाम के साथ करते हैं तो इसका तात्पर्य है कि आप 'प्राण' को किसी अन्य विशिष्ट 'आयाम' अर्थात् कुण्डलिनी की ओर प्रवाहित करते हैं। प्राणायाम 'प्राण' को उत्तेजित करता है तथा बंध इसे विलय होने से रोककर उपयुक्त केन्द्र की ओर अग्रसरित करता है।

अनुसन्धानों से पुष्टि—

गत २०-३० वर्षों से विज्ञान भी कुण्डलिनी के जागरण से शरीर एवं मन में होने वाले परिवर्तनों पर अनुसन्धान कर रहा है। इस संदर्भ में जापान के डॉक्टर हिरोशी मोटोयामा ने कम्प्यूटर चालित पालिग्राफ मशीन से ई. ई. जी., जी. एस. आर. एवं ई. सी. जी. की जांच तथा श्वास में हुए परिवर्तन का बड़े-बड़े योगियों एवं साधकों पर परीक्षण किया। उन्होंने आत्मा से संबंधित जागृत केन्द्रों का परीक्षण किया और पाया कि उनकी क्रियाशीलता में अपार अन्तर है। उनके परीक्षण में पाया गया कि कुण्डलिनी के जागरण से वास्तव में शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होते हैं, विशेषकर उन स्व-चालित स्नायुओं में जो जागृत चक्रों से संबंधित रहते है। ऐसे योगी उन स्वचालित स्नायुओं पर भी नियंत्रण कर सकने में सक्षम होते है और कुछ समय के लिए अपने हृदय की गति को भी रोक सकते हैं। शरीर और मन में बहुत ही नजदीकी मानस-बोध और उससे शरीर एवं मन में हुए परिवर्तनों का अतिक्रमण कर सकने में सक्षम होते हैं। इस अनुसन्धान से स्पष्ट तौर पर इस महान शक्ति का होना प्रमाणित हो गया है। प्रारम्भ में हठयोग, आसन एवं प्राणायाम का ध्येय साधक को कुण्डलिनी योग साधना के लिए तैयार करना मात्र है, क्योंकि कुण्डलिनी के जागरण के पूर्व शरीर को उसकी शक्ति को संभालने की शक्ति से युक्त तथा स्नायुओं का स्वस्थ, समर्थ एवं परिपुष्ट होना आवश्यक है। जब ये सारी साधनायें पूरी हो जायें तो ध्यान का अभ्यास प्रारम्भ होता है।

क्रियाओं का समन्वय—

योग में कुछ साधक ऐसा समझते हैं कि ध्यान का अर्थ एकाग्रता से है लेकिन तंत्र एवं कुण्डलिनी योग में इस एकाग्रता को मन के ऊपर अन्याय करना बतलाया गया है क्योंकि इससे मन के प्रवाह को रोक दिया जाता है। आप मन को निर्देश दे सकते हैं पर रोक नहीं सकते। आप क्रियायोग में पायेंगे कि मन को किसी एक बिन्दु पर एकाग्र करने के लिए एकाग्रता आवश्यक नहीं है। ध्यान का लक्ष्य मन की प्रकृति को बदल देना नहीं हैं, और न वह संभव है, क्योंकि मन कोई भौतिक, दार्शनिक, धार्मिक या जातीय इकाई नहीं है। यह जीवन का एक ओज है, चित्त की एक वृत्ति है, एक रचना है। इस-लिए कुण्डलिनी योग में चित्त की उस प्राकृतिक वृत्ति से व्यर्थ लड़कर समय गँवाना उप-

युक्त नहीं है, क्योंकि चित्त तीन गुणों, सत्त्व, रजस् एवं तमस् का सृजन है। मन प्रकृति का ज्येष्ठ भ्राता है और प्रकृति में ही सभी गुण तथा रूप का उद्भव है।

तब हम लोग क्या करें? किसी उत्तम आसन सिद्धासन या पद्मासन में बैठ जायें। पहले नाड़ी शोधन क्रिया का अभ्यास करें। फिर मन-शोधन, चित्त-शोधन एवं प्राण-शोधन की क्रिया कुछ वर्षों तक करें। प्रथमतः नाड़ी शोधन प्राणायाम द्वारा पुनः मन-शोधन हठयोग द्वारा, चित्त-शोधन प्रत्याहार द्वारा एवं प्राणशोधन का क्रियायोग द्वारा अभ्यास करें। ये सभी प्रारम्भिक स्तर हैं। जब ये अभ्यास पूरे हो जायें तो इनके बीच में गायत्री मंत्र का भी समावेश कर देना चाहिये। जैसे—नाड़ी शोधन प्राणायाम के अभ्यास में पूरक, अन्तरंग—कुंभक, रेचक एवं बहिरंग कुंभक के बीच मंत्र का परिवेश—(१:२:२:१) के अनुपात में करें। अन्तरंग कुंभक में जालंधर बंध व मूलबंध एवं बहिरंग कुंभक में जालंधर, उड्डियान व मूलबंध लगायें, पर यह अनुपात बराबर बना रहे। नाड़ीशोधन के एक चक्र के बाद थोड़ी देर चिन्मुद्रा में रहें तथा अपनी दृष्टि को आंखें बन्दकर नासिकाग्र पर स्थित करें। इस प्रकार नासिकाग्र के ऊपर दृष्टि करने से मूलाधार झंकृत होता है क्योंकि नासिकाग्र तथा मूलाधार सीधे जुड़े हुए हैं एवं नासिकाग्र घ्राण अंग है। इसके देवता गणेश हैं और पृथ्वी इसका तत्त्व है। मूलाधार का भी तत्त्व पृथ्वी ही है, जिसका गुण घ्राण है। इस गुण का वाहक हाथी है।

अपनी दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर केवल दो या तीन मिनट ही रखें। जब आपकी प्राणशक्ति शान्त एवं स्थिर हो जाये तो आप नाड़ी शोधन का दूसरा चक्र फिर से आरम्भ करें और नासिकाग्र दृष्टि का अभ्यास करें। इस तरह बंध के साथ-साथ नाड़ी-शोधन, अनुलोम-विलोम प्राणायाम का अभ्यास अपने मंत्र अथवा गायत्री मंत्र के प्रवेश के साथ पांच बार करें। अगर गायत्री मंत्र है तो इसके एक जाप को एक इकाई मानें। अगर यह कोई अन्य मंत्र है तो इसका अनुपात आपकी समर्थता के अनुरूप होना चाहिए।

स्पष्टीकरण—

उस पारलौकिक शक्ति को देख पाना हर व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। यद्यपि हर व्यक्ति युगों से इसकी कामना करता आया है। पर हर कामना के लिए मन में उसका आधार होना चाहिए, क्योंकि हर व्यक्ति मन से ही अनुभव करता है, भावना से ही विचारता है तथा ज्ञान से ही आंकता है। अतः क्या आपने अपनी बुद्धि को प्रशिक्षित किया है? अगर नहीं तो पहले इसे करो। कुण्डलिनी के जागरण का प्रभाव हमारे स्थूल शरीर पर भी पड़ता है। इसीलिए कुण्डलिनी योग का अभ्यास प्रारम्भ करने के पहले अपने स्थूल शरीर को विष विहीन व शुद्ध करना आवश्यक है। अतः वह शरीर जो योगाग्नि से तपाकर विशुद्ध किया जा चुका है, कुण्डलिनी के जागरण हेतु सबसे स्थायी तथा विश्वसनीय योग्य आधार है।

जब कुण्डलिनी जागृत होती है, वह क्षण जीवन का ऐतिहासिक क्षण होता है। उस समय मनुष्य अपने पाशविक स्वरूप को त्याग कर, विचारों को त्यागकर, विशुद्ध भावनाओं, विचारों और सूक्ष्म चेतना के उत्तम सिंहासन पर विराजमान हो जाता है। जीवात्मा के इस उत्थान में निश्चय ही ऐतिहासिक सीमा रेखायें होती हैं। जीव के विकास की यह यात्रा सर्वप्रथम वनस्पतियों से प्रारम्भ होकर छोटे-छोटे जीव-जन्तु, पक्षियों, जानवरों आदि से पारकर अन्ततः मनुष्य के रूप में अवतरित होती है। मनुष्य जब अपनी चेतना में जीता है, तो वह तर्क एवं गणित के आधार पर जीता है। इस प्रकार कुण्डलिनी का जागरण मनुष्य के जीवनकाल में सचमुच एक सीमा रेखा है, जब वह तर्क के संसार से बिल्कुल हटकर आन्तरिक ज्ञान के संसार में प्रवेश कर जाता है। पतंजलि ने अपने योग सूत्र में लिखा है—"ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा" अर्थात् तत्त्वज्ञानी की परम चेतना पूर्ण ज्ञान से परिपूर्ण हो जाती। पर यह "ऋतम्भरा" पूर्ण ज्ञान का आधार उस परम नियत का परम ज्ञान है। वेद में कहा गया है कि यह संसार दो तत्त्वों से बना है, वह है ऋतम् और सत्यम्। 'सत्यम्' अर्थात् मन की सापेक्ष अनुभूति। जो परिवर्तनशील है, और ऋतम् जो पूर्णतया सत्य तथा अपरिवर्तनीय है। "ऋतम्भरा प्रज्ञा" का आधार वह सर्वोत्तम ज्ञान है, जिसे शब्दों की परिभाषा में बताया नहीं जा सकता। कुण्डलिनी योग का ध्येय मनुष्य की चेतना का इस प्रकार सम्पूर्ण परिवर्तन करना है, जिसे पहले बुद्धि से भी नहीं जाना जाता था। कुण्डलिनी का जागरण मनुष्य जीवन का वह महान काल है, जब उसका चित्त सर्वोच्च चेतना में अवतरित हो जाता है।

छोटे-छोटे बच्चे, युवा एवं विचारवान् व्यक्ति, चाहे वे किसी भी धर्म के मानने वाले हैं, उत्तरोत्तर चेतनशील होते जा रहे हैं। वे समझना चाहते हैं कि वे अपनी सीमाओं को कैसे पार करें। वे अपने जीवन का ध्येय तथा अन्त जानना चाहते हैं, जिसके लिए वे लगातार क्रियाशील हैं। कृपया ऐसा नहीं सोच बैठें कि कुण्डलिनी योग के विज्ञान को बताते समय हम मनुष्य जाति को कर्म विमुख कराना चाहते हैं। यह ध्यान रहे कि भारत के सारे शक्तिशाली एवं क्रियाशील आन्दोलनों में संन्यास एक ऐसा ही आन्दोलन रहा है। अगर भारत का कोई इतिहास है तो वह ऋषियों, संन्यासियों और महात्माओं का इतिहास है। उन्हें अलग कर दो तो तब न अपना कोई साहित्य, न कोई धर्म और न कोई संस्कृति ही रह जाती है। अगर कोई बात जिससे हमें विमुख होने का विचार करते हैं, तो वह मात्र यह है जिसमें मनुष्य अपने आवेग तथा मानसिक उथल-पुथल से पृथक् हो सके, जिसमें कि वह लगातार जूझ रहा है।

सारे संसार के लोग "सत्य क्या है" यह जानने की इच्छा कर रहे हैं। क्या यही कुण्डलिनी जागरण है? क्या यह किसी मन्दिर, मस्जिद या गिरिजाघर में मिल सकता है? क्या इसे धर्मपुस्तकों में पा सकते हैं? हम लोग सदा से इसकी खोज करते चले आ रहे हैं, जिन्हें मैंने जाना है, जीवन में अनुभव किया है। मैं अन्य कोई बात मानने को तैयार नहीं हूं सिवाय यौगिक व्यवहार के। यही एक पथ मनुष्य जीवन के चरम विकास हेतु

सबों के लिए समान रूप से खुला हुआ है। इसके प्रयोग कुछ एक ही हैं। यह आपको अपना व्यवसाय बदलने को नहीं कहता और न आपको अपने परिवार को और न इस विश्वास को तोड़ने को कहता है कि वैवाहिक जीवन एक पाप का जीवन नहीं है। विश्व के इतिहास में तंत्र तक ऐसा दर्शन है, जिसने विवाह को संस्कार माना है। विवाह सूत्र पवित्रतम बन्धन है, जो एक पुरुष और नारी के बीच हो सकता है। यह धर्म माना जाता है और योग का प्रारम्भिक दर्शन है। यह कुडलिनी योग का शिलालेख है जिस पर कुण्डलिनी आधारित है। योगशास्त्र का ध्येय मात्र एक ही है कि संसार के लाखों-लाखों लोगों को जो कामुक,पाशविक,अथवा सात्त्विक प्रवृत्ति के हैं, उन्हें जैसे भी हो कुण्डलिनी के जागरण हेतु तैयार किया जाये। इसी कारणवश धर्म और कर्म का आविर्भाव हुआ। आश्रम एवं मन्दिर बनवाये गये तथा गुरु-शिष्य की परम्परा चली। जैसे किसी गृहस्थ के लिए अपनी सारी समस्याओं, जिम्मेदारियों, मानसिक, नैतिक व्यवधानों के होते हुए भी उसका ध्येय मात्र एक ही होता है—परिवार का भरण-पोषण करना। उसी प्रकार साधकों को भी उस महाशक्ति के जागरण की तैयारी हर स्थिति में करते जाना चाहिए। अगर मन में यही मूल धारणा है तो सिद्धि और सफलता अवश्य मिलेगीं।

अपनी परख

यह मैं बतला दूं कि इस अनुभव के लिए शीघ्रता नहीं करनी है। पहले आप अपने को आंक लें तथा तौलें कि क्या आप उस पराशक्ति को देखने एवं सहन करने के योग्य हैं। पहले आप काम, क्रोध, भय, ईर्ष्या, द्वेष वैराग्य, बीते हुए दुःख एवं निजी जनों की मृत्यु से दुखी होने आदि सांसारिक झंझावातों को सहने की शक्ति पा लो। जब आप जीवन की इन छोटी-छोटी घटनाओं में अपना संतुलन बनाये रख सकें और जब जीवन की सारी समस्याओं का पलड़ा आपके विमुख हो, यदि उनमें भी आप अपने को निर्द्वन्द्व और प्रसन्नचित्त रख सकें तब आप समझो कि आप कुण्डलिनी योग के सच्चे आकांक्षी हो। जब ये साधनायें सारी पक्की हो जायें तो आप बैठ जायें तथा अपनी क्रियाओं का अभ्यास आरम्भ करें और बम-विस्फोट होने की प्रतीक्षा करें और तब प्रचण्ड शक्ति लिये कुण्डलिनी अपनी निद्रा से जागेगी। अगर आपकी साधना पक्की है तो आपको कोई खतरा नहीं होगा। आप सृजनात्मक शक्ति के मालिक बनेंगे और वह जीवन का एक ऐतिहासिक तथा अविस्मरणीय क्षण होगा।

हठयोग और कुण्डलिनी जागरण

—स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

योग विज्ञान ने कोई अद्भुतता प्रकट नहीं की है बल्कि मनुष्य की अपनी गुप्त शक्ति के जागरण की आशा की पूर्ति की है। जब मनुष्य अज्ञान से घिरा था उस समय वह अपने अस्तित्व को स्थूल रूप में शरीर, मन व भावना तक ही जान पाया और तब वह दु:ख के बवण्डर में घिर गया। मगर लगता है ब्रह्माण्डीय चेतना अपना चक्र पूरा कर रही है और अब धीरे-धीरे मनुष्य अपनी मूल प्रकृति की खोज के लिए उत्सुक हो गया है।

मनुष्य ने अपने को शरीर व मन तक ही सीमित कर लिया है और इसलिए अब उसे परम आत्मा का अनुभव या दर्शन करना बड़ा कष्टसाध्य कार्य मालूम पड़ रहा है। कैसे अपने को स्थूल प्रकृति से अलग करें और किस प्रकार उस उच्च चेतना से संबंध स्थापित करें ? केवल अपनी सुषुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करके ही हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है। योग के पास सर्व-साधारण के लिए आसान कुण्डलिनी जागरण की नियमित और वैज्ञानिक पद्धति, है जिसे बिना किसी विशेष परिश्रम के साधा जा सकता है।

योग शास्त्र के अनुसार कुण्डलिनी या आध्यात्मिक शक्ति के जागरण में हठ-योग महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ठीक उसी प्रकार जैसे—एक मोटर गाड़ी में ब्रेक, एक्सीलेटर और स्टीयरिंग में सामंजस्य की आवश्यकता है; हमारे शरीर के विभिन्न संस्थानों में सामंजस्य जरूरी है । हठयोग का वास्तविक अर्थ है शरीर की प्रमुख शक्तियों में संतुलन ।

दो शक्तियों में संगति

इन दो शक्तियों में एक है—सूर्य शक्ति जिसका प्रतिनिधित्व 'ह' अक्षर करता है और दूसरी है चन्द्र शक्ति जिसका प्रतिनिधित्व 'ठ' अक्षर करता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार चन्द्रशक्ति मनुष्य के मानसिक क्रिया-कलाप से सम्बन्धित है जिसमें—जानना, विचारना, तर्क-वितर्क करना, स्मृति, सत्-असत् विवेक आदि गुण सम्मिलित हैं। सूर्य शक्ति का सम्बन्ध शारीरिक कार्य व जीवनचर्या,श्वसन, पाचन, रस-स्राव, रक्त-परिभ्रमण आदि से है।

जब मानसिक और प्राणिक शक्ति में संगति होती है तब योग सहज व सरल हो जाता है। इसकी संगति मिलाना बड़ा कठिन है। अधिकतर लोगों में या तो सूर्य शक्ति की प्रधानता होती है या चन्द्र शक्ति की। सूर्य शक्ति अधिकता रजोगुण का कारण होती है, चन्द्र शक्ति की प्रधानता तमोगुण का कारण होती है। सूर्य शक्ति के कारण व्यक्ति अति संवेदनशील होता जाना है और चन्द्र शक्ति के कारण उदासीन। यदि आप इन

दो शक्तियों में सम-रसता चाहते हैं तो आपको अति उदासीनता या अति उत्तेजना को नियन्त्रित करना होगा।

शरीर में इन दोनों शक्तियों को मन व प्राण नाम दिये गये हैं। आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में हम उन्हें सिम्पेथेटिक और पैरा-सिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम कहते हैं। ये दोनों प्रणालियां सम्पूर्ण शरीर के क्रिया-कलापों को नियन्त्रित करती है। इन दोनों में असंतुलन व्यक्ति को या तो पागलखाने ले जायगा या कारावास।

नाड़ियों की शुद्धि

हठयोग के ग्रन्थों के अनुसार हमारे शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियां हैं जो शरीर के विभिन्न क्रिया-कलापों को चलाती हैं। इनमें इड़ा और पिंगला शरीर में दो प्रमुख नाड़ियां मानी गयी हैं। पिंगला नाड़ी सूर्य शक्ति की प्रवाहिनी होती है तथा इड़ा नाड़ी चन्द्र शक्ति या मनस् शक्ति की प्रवाहिनी। ये दोनों नाड़ियां रीढ़ की हड्डी में प्रवाहित होती है—इड़ा बायीं तरफ और पिंगला दाहिनी तरफ। रीढ़ की हड्डी की विभिन्न ग्रन्थियों से इड़ा और पिंगला की शाखायें शरीर के विभिन्न अंगों की ओर वितरित हो जाती हैं। आप इसे बिजली के पावर हाउस के उदाहरण से समझ सकने हैं। हाई-टेंशन पावर हाउस से बिजली बाहर लाते हैं, उनके करेंट को ट्रान्सफार्मर में लाया लाया जाता है और वहां की डोमेस्टिक लाइन द्वारा बिजली घर-घर में पहुंचाई जाती है।

उसी प्रकार इड़ा--पिंगला महत् शक्ति को लेकर चलती हैं। चक्र स्थानों से शक्ति का वितरण होता है। इस प्रकार मनस् और प्राण शक्ति सभी अंगों को प्राप्त होती रहती हैं। यदि प्रवाह सरल न हुआ, उसमें अवरोध है तो आपको शारीरिक या मानसिक थकान का अनुभव होगा। अनावश्यक अत्यधिक चिन्ता या विचार के कारण नाड़ियां कमजोर, अशुद्ध और शक्ति-प्रवाह के अयोग्य हो जाती हैं। अतः हठयोग में नाड़ियों की शुद्धि का बड़ा ही महत्व है।

सुषुम्ना नाड़ी

इड़ा-पिंगला के अलावा एक और प्रमुख नाड़ी है, जिसे सुषुम्ना कहते हैं। यह रीढ़ की हड्डी के मध्य से प्रवाहित होती है। यह महत् शक्ति को ले जाने वाली नाड़ी है। हम कह सकते हैं कि इड़ा-पिंगला स्थूल शक्ति का निर्माण करती हैं और सुषुम्ना सूक्ष्म शक्ति का। मनस् व प्राण शक्तियां सीमित हैं और सुषुम्ना की शक्ति असीम है। अतः हठयोग का प्रमुख उद्देश्य हैं, इस सीमित शक्ति को असीम शक्ति से जोड़ना, अतः हम कह सकते हैं कि कि हठयोग केवल शारीरिक योग नहीं यह उच्च अभ्यास है जो शरीर के माध्यम से किया जाता है। शुद्धिकरण की षट्-क्रिया आसन प्राणायाम मुद्रा बंधों के अभ्यास को मात्र शारीरिक स्तर तक ही सीमित कर देना उचित नहीं।

आसनों का उद्देश्य

यद्यपि लोग आसनों का रोगोपचार के लिए उपयोग कर रहे हैं, किन्तु यह उनका

मूल उद्देश्य नहीं है। मैं भी एक समय ऐसा ही सोचा करता था कि योग आसन केवल शारीरिक व्यायाम मात्र है; मगर अब मैं जान गया हूं कि कुण्डलिनी जागरण के लिये योगासन का अभ्यास जरूरी है। जब मैं अपने गुरु शिवानन्दजी के साथ था तो मैं उनके योग प्रवचनों को टाइप किया करता था। जब उन्होंने लिखा कि सर्वांगासन विशुद्धि चक्र को, भुजंगासन मणिपूर चक्र को व शीर्षासन सहस्रार चक्र को जगाते हैं, तो मुझे इस बात पर विश्वास न हुआ। एक बार मुझे स्वामीजी से इस विषय पर बात करने का मौका मिला—स्वामी जी ने समझाया कि किस प्रकार आसनों से चक्रों का मृदु जागरण होता है। अब तो मुझे इस बात पर पूर्ण विश्वास हो गया है। अतः जब आप आसनों का अभ्यास करते हैं तो विभिन्न चक्रों पर उनका प्रभाव पड़ता है।

प्राणायाम प्रक्रिया

प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा हम अपने प्राणिक शरीर में सुव्यवस्था उत्पन्न करते हैं। जहां प्राणशक्ति की कमी होती है, उस अंग को प्राण पूर्ति की जाती है। जब आपको मूलाधार या सहस्रार में प्राणों की आवश्यकता हो, वहां इसकी पूर्ति करने की आपमें सामर्थ्य होनी चाहिये। जब आप ध्यान के लिए बैठते हैं, तो ऊपरी भाग में अधिक प्राणशक्ति की जरूरत होती है और जब आप भोजन करने बैठते हैं, तो निचले भाग में प्राणशक्ति की जरूरत होती है। उसी प्रकार जब आप योगनिद्रा का अभ्यास करते हैं या सोते हैं, उस समय सम्पूर्ण शरीर में प्राण वितरित होना चाहिए। जब आप प्राणायाम के अभ्यास सिद्ध कर लेंगे तभी आप आवश्यकतानुसार प्राण प्रवाहित कर सकेंगे।

प्राणायाम प्राणशक्ति को बढ़ाता है और वह स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है, मगर प्राणायाम साधारण श्वास-प्रश्वास से भिन्न एक महत्त्वपूर्ण अभ्यास है। यह सुषुप्त कुण्डलिनी को जगाता है। नाड़ी शोधन, भस्त्रिका, कपालभाति, शीतली व शीतकारी आदि विभिन्न प्राणायाम इसी उद्देश्य की पूर्ति के साधन हैं। प्राणायाम और मन्त्र का संयोजन बड़ा ही शक्तिशाली होता है, कहते हैं यही योग की उचित परिभाषा है।

प्राणों का परिचय

प्राण को हम श्वास के साथ लेते हैं। हम प्राणों के साथ ही पैदा हुए हैं। हमारे अन्दर प्राणों का प्रादुर्भाव माता के गर्भ में ही हुआ। ब्रह्माण्ड के सभी क्रियाकलाप प्राणों की वजह से ही हो रहे हैं। यदि प्राण न होते सृष्टि का अस्तित्व ही न होता। यदि आप प्राणों के विषय में समझना चाहते हैं तो आपको अपने अस्तित्व के विषय में समझना होगा। जहां जीवन का अस्तित्व नहीं वहां प्राण नहीं। प्राण के विखण्डन के कारण ही ब्रह्माण्ड का उदय हुआ।

प्राण के दो पहलू हैं लघु ब्रह्माण्ड और बृहद् ब्रह्माण्ड। मैं आपको बृहद् ब्रह्माण्डीय प्राणों के विषय में नहीं बताऊंगा, वह बहुत ही जटिल विषय हो जायगा।

लघु ब्रह्माण्डीय प्राण पक्ष जो आपमें और मुझ में विद्यमान है और सभी विषयों में विद्यमान है, बृहद् ब्रह्माण्ड का स्थूल रूप है । हम प्राण के सूक्ष्म रूप के विषय में नहीं सोच पाते हैं; यह परिवर्तनीय है। जिस प्रकार पदार्थ शक्ति रूप में प्रगट होता है और शक्ति पदार्थ में, उसी प्रकार प्राण को क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है व क्रिया को प्राण रूप में । इसीलिए हठयोग में प्राणों के विज्ञान को सर्वोपरि माना है ।

इड़ा, पिंगला व सुषुम्नाका योग

मनुष्य शरीर में प्राणों के इस विज्ञान में दो स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण माने गये हैं— एक है रीढ़ के आधार में मूलाधार चक्र, दूसरा है आज्ञाचक्र जो रीढ़-केन्द्र के सबसे ऊपरी छोर के समानान्तर है । इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना मूलाधार से आरम्भ होती हैं और आज्ञा में समायोजित हो जाती हैं। कुण्डलिनी मूलाधार में सोई पड़ी है। जब वह जागती है तो सुषुम्ना मार्ग से ही ऊपर उठती हैं। इड़ा-पिंगला व सुषुम्ना मार्ग से ही ऊपर उठती है। इड़ा-पिंगला व सुषुम्ना एक जैसी नहीं चलतीं; प्राणायाम के अभ्यास से ही इनमें संगति बैठती है। जब आप त्राटक या कपालभाति का अभ्यास करते हैं, तो इनमें सामंजस्य स्थापित होता है। जब इनमें सामंजस्य स्थापित होता है, तब दिव्य शक्ति प्रवाहित होने लगती है।

आज्ञाचक्र के जागरण एवं शक्ति की तीनों प्रवाहिनियों को मिलाने के लिए शांभवी मुद्रा का अभ्यास बड़ा ही उपयोगी है। आंखें खोलकर दोनों गोलकों को भ्रूमध्य में जमाकर बैठना । आरम्भ में आपको एक अंगुली का सहारा लेना होगा, बाद में इसकी आवश्यकता नहीं रह जाती। शांभवी मुद्रा से इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना का योग होता है और कुण्डलिनी शक्ति प्रवाहित होती है ।

जब यह शक्ति प्रवाहित होती है, तो साधक को कई अद्‌भुत अनुभूतियां होने लगती हैं। चेतना प्रबोधन के रूप में प्रकट होती है। यह आध्यात्मिक अनुभव है। कई बार आप ज्योतिपुंज के दर्शन कर सकते हैं, कई लोग अग्निशिखा देखते हैं; जिसका प्रकाश बढ़ता जाता है। यह इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का संकेत है। यही हठयोग का अन्तिम उद्देश्य है।

प्राण और कुण्डलिनी

जब आप हठयोग का मूल अर्थ खोजेंगे तो आपको मालूम होगा इड़ा-पिंगला और सुषुम्ना का योग ही हठयोग है। इसका दूसरा अर्थ हुआ—लघु ब्रह्माण्डीय प्राण शक्ति का बृहद् ब्रह्माण्डीय शक्ति या आध्यात्मिक शक्ति में समायोजन ही हठयोग है। अत: वह साधक को उसके अन्तिम लक्ष्य प्राणोत्थान तक पहुंचने का साधन है । प्राण क्या है ? प्राण और कुण्डलिनी पर्यायवाची शब्द हैं । प्राणों का उत्थान कुण्डलिनी का जागरण है । कुण्डलिनी जागरण द्वारा आप ब्रह्माण्डीय प्राणों में स्वयं को समायोजित करते हैं ।

कुण्डलिनी लघु प्राणशक्ति है। इसका प्रतीकात्मक रूप सर्पिणी के समान है किन्तु आप इसे किसी भी रूप में मान सकते हैं। प्राण का कोई आकार नहीं होता यह असीम शक्ति है । हम सभी प्राणों के ही स्वरूप हैं ।

कुण्डलिनी साधना के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न और उनके समाधान

—स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

कुण्डलिनी क्या चीज है और उसका शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

मानव शरीर में रीढ़ की हड्डी के मध्य में ६ भिन्न-भिन्न महत्त्वपूर्ण व सूक्ष्म केन्द्र हैं जिनको आध्यात्मिक भाषा में चक्र के नाम से संबोधित किया जाता है। इसमें सबसे नीचे का चक्र मूलाधार है, और इसके ऊपर क्रमशः स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा चक्र स्थित हैं। हर एक चक्र में एक शक्ति का पुंज विद्यमान रहता है। इसका मतलब हुआ कि ये चक्र मस्तिष्क से सम्बन्धित हैं और जो अभी काम नहीं कर रहे हैं। विविध साधनाओं के अभ्यास से इन चक्रों को जागृत कर क्रियाशील बनाया जाता है और तब मस्तिष्क के अन्य चक्रों से सम्बन्धित भाग भी सजग हो जाते हैं।

आप जानते हैं कि मस्तिष्क में अतीद्रिन्य शक्तियां विद्यमान हैं लेकिन साधारण मनुष्य इन शक्तियों का उपयोग नहीं कर सकता। मनुष्य का विकास मानसिक स्तर तक हुआ है, लेकिन इसके आगे अभी वह बढ़ नहीं सका है। मस्तिष्क में अतीद्रिन्य शक्तियों के जो केन्द्र हैं, वे इन चक्रों से सम्बन्धित हैं। इसलिए चक्रों को जागृत करने से अतीन्द्रिय शक्तियां भी जागृत हो जाती हैं।

जिस प्रकार शारीरिक विकास की अनेक पद्धतियां होती हैं, उसी प्रकार मानसिक विकास की भी पद्धतियां होती हैं। मन का विकास जब एक सीमा को पार करता है, तब शरीर की अतीन्द्रिय शक्तियों का विकास स्वयमेव होने लगता है। अतीन्द्रिय शक्तियों का प्रतीक है कुण्डलिनी।

कुण्डलिनी का अर्थ होता है 'गहरी और खाली जगह'। शास्त्रों में कुण्डलिनी का वर्णन साढ़े तीन कुण्डल मारे हुए सर्प के रूप में किया गया है। तीन कुंडल त्रिगुणों के प्रतीक हैं और आधा कुंडल त्रिगुणातीत अवस्था का प्रतीक है। देवी या जगन्माता भी कुण्डलिनी का प्रतीक है। जो शक्ति विश्व की सभी शक्तियों का आधार है उसी का प्रतीक है सर्पाकार कुण्डलिनी।

इस पार्थिव शरीर में हड्डी, मज्जा एवं मांस के परे एक शक्ति विद्यमान है जो विश्व शक्ति का रूप है। यह हर एक व्यक्ति में सुषुप्तावस्था में रहती है और इसको जागृत करने से उस व्यक्ति का संपूर्ण व्यक्तित्व जागृत हो जाता है। तब वह व्यक्ति शरीर

और मन के ऊपर उठ जाता है। कुण्डलिनी योग का यही सिद्धान्त है।

तंत्र शास्त्र का सिद्धान्त है कि पदार्थ शक्ति का स्वामी है। पदार्थ में शक्ति सुषुप्तावस्था में रहती है। पदार्थ की क्रियाओं को देखा जा सकता है किन्तु शक्ति पदार्थ में रहते हुए भी अदृश्य है। सृष्टि की यही अवस्था है। सृष्टि में पदार्थ की सत्ता दिखाई देती है शक्ति की नहीं। तंत्र शास्त्र में पदार्थ को शिव कहा गया है। शक्ति तीन प्रकार की होती है—सृजनात्मक, स्थित्यात्मक और संहारात्मक। पदार्थ में ये तीन प्रकार की शक्तियां विद्यमान रहती है। वस्तुतः पदार्थ और मन एक ही वस्तु है और इन दोनों से ढंकी हुई रहती है शक्ति।

विश्व में जितने भी शक्ति पदार्थ हैं वे 'शिव' हैं। हिन्दू लोगों में शिव की एक कल्पना होती है, लेकिन मैं 'शिव' शब्द का अर्थ समझता हूं। शक्ति प्रत्येक पदार्थ में सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहती है। जब शक्ति जागृत हो आती है तो शक्ति पदार्थ का स्वामी बन जाती है, शिव बन जाता है। कुण्डलिनी योग का यही उद्देश्य है। शिव और शक्ति में अभेद की स्थापना करना। आपने शायद शिव को मनुष्य के रूप में सोते हुए और शक्ति को काली के स्वरूप में उनकी छाती पर पैर रखकर नाचते हुए दृश्य का चित्र देखा होगा। यह शक्ति के जागृत होने का प्रतीक है।

शक्ति जागृत होते समय विकराल व भयंकर रूप धारण करती है। शक्ति का विस्फोट होते समय वह दृश्य कितना प्रलयंकारी होता है, यह आप किसी वैज्ञानिक से पूछ सकते हैं। शरीर, इन्द्रिय, मन और प्राण ये सब पदार्थ के विभिन्न रूप हैं। संपूर्ण सृष्टि पदार्थ का ही रूप है। जो कुछ इन्द्रियों से जाना जा सकता, वह आत्मा है। अब तक जिन तीनों चीजों को देखा गया। वे हैं पदार्थ, शक्ति और आत्मा।

प्रश्न—आध्यात्मिक यौन क्रिया का किसी भी व्यक्ति के साथ अभ्यास किया जा सकता है क्या? इसमें किन नियमों का पालन करना पड़ता है? जिस व्यक्ति के साथ इसका अभ्यास करना पड़ता है, उसके सम्बन्ध में क्या कोई जिम्मेदारी उठानी पड़ती है?

सभी प्राणियों के बीच पारस्परिक संघर्ष होता रहता है। प्राणियों में चार स्वाभाविक कामनायें होती हैं। लेकिन मनुष्य में एक महत्त्वपूर्ण कामना और भी है, और वह है अपने अस्तित्व का ज्ञान।

दूसरे प्राणी अविद्या के अंधकार से घिरे हुए हैं। वे अपने स्वभाव के अनुसार चलते हैं। मनुष्यों की भांति अपने प्रति सजग नहीं हैं। प्राणियों को सुख-दुःख का अनुभव होता है। वे परिस्थिति का प्रतिकार करते हैं, लेकिन उनको मालुम नहीं रहता कि उनको सुख-दुख का अनुभव होता है। वे परिस्थिति का प्रतिकार करते हैं, लेकिन उनको मालूम नहीं रहता कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं। जैसे कुत्ता भौंकता है, लेकिन हम भौंक रहे हैं, यह ज्ञान उसको नहीं रहता है। मनुष्य को अपने काम की चेतना रहती है। उसे देश-काल में होने वाली घटनाओं की चेतना रहती है। यही चीज मनुष्य को विशेष वरदान स्वरूप

मिली है। आप मेरी बात सुन रहे हैं और आपको यह भी ख्याल है कि आप सुन रहे हैं। यह जो विशेष चेतना है उसे अन्तर्ज्ञान कहते हैं।

आप जब भोजन, निद्रा, भय और मैथुन के लिए ज्ञान के साथ प्रवृत्त होते हैं, तब आप अपने स्वभाव के आधार पर कार्य करते हैं। दिव्य जीवन पशुओं को साध्य नहीं हो सकता, क्योंकि वे स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अनुसार चलते हैं। वे केवल भौतिक स्तर पर जीवन बिताते हैं। इसी प्रकार जो लोग मैथुन में उसका महत्त्व समझे बिना प्रवृत्त होते हैं, वे पाशविक स्तर पर काम करते हैं। लेकिन जो लोग मैथुन को आध्यात्मिक उन्नति का साधन समझकर और तंत्र शास्त्र में वर्णित विधि का पालन करते हुए उसमें प्रवृत्त होते हैं, वे मैथुन का सर्वोत्तम फल प्राप्त करते हैं।

जब नर और नारी वैवाहिक संबंधों के द्वारा या अपनी इच्छानुसार आधुनिक समाज में साथ-साथ रहने लगते हैं, तो सबसे मुख्य चीज यही ख्याल में रखनी चाहिए कि नर और नारी का आपसी सम्बन्ध केवल पशुतुल्य वासना का ही नहीं है। उनके बीच केवल पाशविक सम्बन्ध ही नहीं, वरन् साथ-साथ रहने का पवित्र आध्यात्मिक उद्देश्य होता है। यह कथन केवल आदर्शवादी ही नहीं है—यह प्रत्यक्ष जीवन का सत्य है कि नर और नारी एक दूसरे के आध्यात्मिक जीवन में पूरक हो जाते हैं। आध्यात्मिक उन्नति एक दार्शनिक कल्पना नहीं है। यह उन्नति शारीरिक और मानसिक स्तर से शुरू होकर नाड़ियों की शुद्धि द्वारा कुण्डलिनी जागरण तक होती रहती है। यदि यही उद्देश्य है तो मैथुन एक आध्यात्मिक साधना बन जाती है, चाहे वह समाज की स्वीकृति के अनुसार हो अथवा नहीं हो।

हिन्दुओं का ऐसा विश्वास है कि मैथुन का उद्देश्य भोग नहीं बल्कि नाड़ी शुद्धि है। भावनात्मक व्यक्तित्व में सन्तुलन लाने का भी यह एक साधन है। जब दो व्यक्ति साथ-साथ रहते हैं, तो एक-दो वर्षों में उनके बीच भावनात्मक और शारीरिक सन्तुलन निर्मित हो जाना चाहिये। लेकिन आज हम देखते हैं कि अनेकों साल दाम्पत्य जीवन में साथ-साथ रहने के बाद भी स्त्री और पुरुष के बीच सन्तुलन कायम नहीं हो पाता है। इसका अर्थ यही है कि आधुनिक समाज में नर और नारी के साथ-साथ रहने का जो दृष्टिकोण और व्यवस्था है, वह विज्ञान के प्रतिकूल और घातक है। इस आधुनिक विचारधारा की जीवन-शैली से आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती।

आपकी यौन क्रिया का समर्थन तभी सफलीभूत और उन्नति का द्योतक होगा जब आप मैथुन की सही विधि तथा उसके वैज्ञानिक और आध्यात्मिक पक्षों को भली-भांति जानें और समझें। यदि कोई सीखने के पहले कार चलाये तो दुर्घटना होना निश्चित है। इसी प्रकार शरीर, मन, इन्द्रियों और प्राण को हठयोग द्वारा शुद्ध और नियन्त्रित करना चाहिये और कर्म योग द्वारा मन की चंचलता नष्ट करनी चाहिये। उसके बाद आप जो कुछ भी करेंगे उससे आपकी उन्नति ही होगी।

इसलिए यदि नर और नारी मैथुन में प्रवृत्त होना चाहते हैं, तो अपने काम-भाव का समर्थन उनको तंत्र शास्त्र के आधार पर नहीं करना चाहिये। यौन क्रिया पर नियंत्रण होने एवं इसके सभी वैज्ञानिक पहलुओं की जानकारी प्राप्त करने के वाद ही तांत्रिक मैथुन का अभ्यास किया जा सकता है और तब वह सर्वाङ्ग उन्नति हेतु योग कहलायेगा, भोग नहीं।

ध्यानावस्था में देश और काल किस तरह एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं ?

मानसिक सजगता तथा चेतना की जागृति, दोनों मिलकर मन को देश और काल के संपर्क में ला देती हैं। असल में व्यक्तिगत मन का तो कोई अस्तित्व ही नहीं है। यह तो एक धारणा मात्र ही है। हां, सर्वव्यापक मन के होने में जरा भी शक नहीं है यह नितान्त सत्य है। सार्वभौमिक मन तो सूक्ष्म तत्त्व से बना हुआ है, जिसका प्रतीकात्सक स्वरूप सुनहले अण्डे के आकार का बताया गया है। सार्वभौमिक मन के केन्द्र स्थल को बिन्दु के नाम से जाना जाता है। इसके दो ध्रुव हैं—देश और काल। काल पाजिटिव या धर्मात्मक शक्ति है और देश निगेटिव या निषेधात्मक। ध्यान की अवस्था में ये दोनों ध्रुव सार्वभौमिक मन के बिन्दु स्थल पर एक दूसरे के समीप आ जाते हैं।

यह बिन्दु केन्द्र है और पदार्थ इसमें निहित है। ध्यानावस्था में जब देश और काल बिन्दु में एक-दूसरे के समीपवर्ती होते जाते हैं तो वहां एक विस्फोट होता है। उस समय देश और काल सार्वभौमिक मन के केन्द्र में सत् हो जाते हैं और तब प्रतीत होता है कि भूत और भविष्य लगातार एक ही लम्बा अनुभव है, ठीक उसी प्रकार जिस तरह से आप एक ही दृश्य-पटल को एक साथ ही देख सकते हैं। तब सार्वभौमिक मन अथवा समष्टि मन, काल, देश और पदार्थ की सत्ता को लेकर एक रूप हो जाते हैं और देश-काल की सीमा-रेखा लुप्त हो जाती है और तब कुछ भी अलग दिखाई नहीं देता अर्थात् सब कुछ एक बिन्दु पर एकाकार हो जाता है।

क्या कुण्डलिनी का उद्‌बोधन नसबंदी के बाद भी संभव है ?

नसबंदी से कुण्डलिनी जागरण में कोई रुकावट नहीं होती है। देखा जाये तो हठ-योग में एक महत्त्वपूर्ण आसन है। जिसे सिद्धासन कहते हैं। इसका उद्‌देश्य है मूलाधार तथा निचली आंत में उत्पन्न होने वाली उत्तेजनाओं तथा संवेदनाओं को नियंत्रित करना, जिससे कि उपरोक्त दो केन्द्रों में उत्पन्न होने वाली उत्तेजना अण्ड ग्रंथियों में उत्तेजना न पहुंचाये।

ब्रह्मशक्ति किस तरह धरती पर अभिव्यक्त होती है ?

कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में जागृत होती है, वहां से उच्च चक्रों मे आरोहण करती हुई उच्चतर चक्र अर्थात् सहस्रार चक्र में पहुंचती है और उसको जागृत करती है,

जैसा कि प्रतीकात्मक ढंग से कहा जाता है कि सहस्रार चक्र में हजारों दल वाला कमल खिल उठता है अर्थात् सम्पूर्ण चेतना प्रस्फुटित हो जाती है। जब उस व्यक्ति की चेतना का स्तर चरम सीमा पर पहुंच जाता है, तब उसको धरती के स्तर तक अर्थात् स्थूल चेतना में फिर आना पड़ता है।

मान लो आप कुण्डलिनी के योग का अभ्यास कर रहे हैं और आपकी कुण्डलिनी जागृत हो गयी तो आपकी उच्च चेतना और मस्तिष्क के उच्चतर केन्द्र सक्रिय हो जाते हैं। आपके मन और चेतना के गुणों में परिवर्तन हो जाता और तब आप स्वाभाविक ढंग से लौकिक दुनिया में मन की महादशा से क्रियाशील हो सकेंगे। यह शक्ति उन सब सन्तों, मनीषियों और महात्माओं का अनुभव है जो कुण्डलिनी उद्‌बोधन की परमावस्था को पहुंचे हैं। इसी प्रकार इन महान आत्माओं की कृपा के द्वारा ही यह शक्ति या चेतना अर्थात् मन की शक्तिशाली महादशा हम लोगों के संग सदा क्रियाशील हो पाती है।

क्या क्रियायोग की शिक्षा पुस्तकों से सीखी जा सकती है या इसको प्रत्यक्ष निर्देशन में मौखिक रूप से ही सीखना पड़ता है?

अभी पिछले कुछ वर्षों में ही हमने सुना है कि क्रियायोग एक परम्परागत विद्या हो रही है और यही बात मैंने पुस्तकों में भी पढ़ी। जब मैं गुरु आश्रम में रहा करता था तो एक बार मुझे वेदों तथा तन्त्र शास्त्र के गहन और विस्तृत अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ। पहले मेरे विचार तन्त्र के बारे में काफी घटिया किस्म के थे और मैं इसको एक प्रकार की सम्मोहन विद्या या कहिये जादू की तरह ज्ञान समझता था। मेरे विचार में यह एक गुप्त और चमत्कारिक विद्या थी। मैं इसको गन्दा व घृणित व्यवसाय समझता था। परन्तु जब मैंने तंत्र शास्त्र की पुस्तकों का अध्ययन किया तो कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण उल्लेखों को पढ़ने का संयोग प्राप्त हुआ जिसमें महत्त्वपूर्ण व उपयोगी अभ्यासों का वर्णन आया जैसे कि हठयोग की क्रियायें, आसन, प्राणायाम, मंत्र विज्ञान और संन्यास, जिसके आधार पर मैंने अपनी योगनिद्रा की प्रणाली का विकास किया। उन्हीं दिनों मेरे गुरुजी के एक शिष्य ने मुझे बताया कि वह क्रियायोग का अभ्यास करता है। मेरे पूछने पर कि वह कैसे किया जाता है, उसने मुझे क्रियायें बतानी शुरू कीं। तो मुझे उसे सुनकर बड़ा विस्मय हुआ क्योंकि वह क्रियायें तो वही थी जो मैं तंत्र शास्त्र में पढ़ चुका था। असल में क्रिया-योग की सभी क्रियायें तंत्र की ही अंग हैं।

बहुत से लोगों ने योग साहित्य पर लिखी प्रामाणिक पुस्तकों का अध्ययन किया होगा और वे महामुद्रा, महावेध, नासिकाग्र दृष्टि आदि-आदि मुद्राओं एवं विभिन्न क्रियाओं के नामों से अवगत होंगे। तो ऐसा कहना कि क्रियायोग का अभ्यास गुरु-शिष्य की परंपरा के अनुसार केवल मुख से ही बताया जाता था—यह बेकार की बात होगी। जहां तक व्यक्तिगत आदेशों के देने की बात है, इन क्रियाओं को मौखिक रूप से जान

सकते हैं और क्रियाओं के बारे में पुस्तकों से भी पढ़ सकते हैं, परन्तु यदि आप वास्तव में क्रियायें सीखना चाहते हैं तो आपको व्यक्तिगत आदेशों की प्राप्ति हेतु गुरु के पास जाना अनिवार्य है।

शक्ति किस प्रकार कार्य करती है ?

मैं अभी जो आपके सामने बोल रहा हूं और आप जो सुन रहे हैं वह मन के सूक्ष्म धरातल पर एक तरंगित रेखाओं के रूप में अंकित होता जाता है। शक्ति धाराओं के रूप में जागती है, उसके स्कैच बनते हैं। जब ध्वनि की तरंगें दूसरे भाग को क्रॉस करती हैं तो वहां त्रिकोण बनते हैं, चतुर्भुज, वृत्त, पंचमकोण, बिन्दु आदि बनते हैं। कई मंत्र समाधि की उच्चावस्था में प्राप्त हुए हैं, जो मस्तिष्क के सूक्ष्म केन्द्रों को प्रभावित करते हैं। यह जो साइंस है इसे आप लोग जानते हैं। यह कोई नई बात नहीं है। अब जैसे गायत्री मंत्र है। इसमें कुल चौबीस अक्षर हैं—ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। इन अक्षरों की कई ध्वनियां हैं। इनमें से अनेक प्रकार की फ्रीक्वेंसी वेलोसिटी वाली करेंट निकलती है और वे सभी वातावरण पर प्रभाव डालती हैं और मनुष्य के मन, शरीर और भावना को भी प्रभावित करती हैं। जैसे कि तालाब में पत्थर फेंकने पर पानी में तरंगें उठती हैं, एक कम्पन होता है और वह शनैः शनैः विस्तार ग्रहण करती जाती है। यह कम्पन पानी के प्रत्येक अणु को कम्पित करता है। उसी प्रकार मैं जो बोल रहा हूं यह शब्द वातावरण पर आघात पैदा करेगा और वह आघात सूक्ष्म रूप से अनेकों लोगों के अन्तर्मन में एक तरंग के रूप में अंकित होता है। गायत्री मंत्र का साधारण अर्थ तो होता है कि "वह हमारी बुद्धि को प्रमोदित करे और हम ब्रह्मचर्य वाले सभी देवता का नमन करते हैं" परन्तु इस मंत्र के शक्तिशाली ध्वनि-मंडल का असर हमारे अन्तःकरण के चित्त की भूमिका पर अमिट रूप से पड़ता है, जो हमें शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से भी विकसित करता है।

इड़ा-पिंगला क्या हैं ?

इड़ा और पिंगला हमारी दो महत्त्वपूर्ण नाड़ियों का प्रतीक है। एक है चन्द्रमा, एक है सूर्य। एक है "हं" और एक है "क्षं"। ये दोनों शक्तियां स्वरों की प्रतीक हैं। आज्ञा चक्र जो है वह है इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीनों का मिलन-स्थल। इसलिए आज्ञा चक्र को हम लोग त्रिवेणी भी कहते हैं। जितने भी महात्मा लोग हैं वे अपनी चेतना को आज्ञा चक्र में ही स्थापित करना चाहते हैं, जो सभी चक्रों का नियंत्रण कक्ष है। वैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में कुछ प्रयोग किये हैं, उन प्रयोगों से मस्तिष्क में कुछ इलेक्ट्रोड स्थापित किये गये हैं। इस इलेक्ट्रोड से मनुष्य के मस्तिष्क के अन्दर में जो टाइम, स्पेस का कॉनसेप्ट है, समय और स्थान की जो विचारधारा है, उसे मिलाने की कोशिश की जाती है। यह मालूम होता है कि जिस समय आज्ञा चक्र में शक्ति का प्रवेश होता है, उस समय तीनों काल भूत, भविष्य और वर्तमान एक जगह हो जाते हैं और स्मृति सामने में चित्र रूप में दिखाई देती है। आज्ञा चक्र नियंत्रण केन्द्र है। यहां से मस्तिष्क का आदेश मिलता है, जब

तक मनुष्य आज्ञाचक्र को नियंत्रित नहीं करता। तब तक वह सहस्रार में स्थित उच्चतम चेतना के केन्द्रों को नियंत्रित नहीं कर सकता।

चक्र की जागृति में मंत्र का चयन किस प्रकार करें ?

साधक को उसी मन्त्र का चयन करना चाहिये जिससे उसकी चेतना भौतिक धरातल को छोड़कर आध्यात्मिक ऊंचाई पर पहुंच सके। मंत्र चाहे गायत्री हो, अल्ला हो या अकबर हो, चाहे जो भी हो हमें तो स्पष्ट और सही उच्चारण से मतलब है। बन्दूक चाहे कहीं की भी हो, हमें गोली छोड़ने से मतलब है। उसी प्रकार मंत्र का सही ढंग से निष्ठापूर्वक जप करने से भी सहज रूप से चक्र जागृत हो जायेगा।

हम साधकों का केवल एक लक्ष्य है कि स्थूल और सामान्य चेतना को छोड़कर आध्यात्मिक और उच्च चेतना पर पहुंच करके अपनी प्रज्ञा, अपनी प्रतिभा को कैसे जगाना, अपने मस्तिष्क को कैसे ज्योतिर्मय करना, अपनी सीमाओं को कैसे तोड़ना, अपनी मजबूरियों को कैसे जीतना, यह हमारा लक्ष्य है। जब वह हमारा लक्ष्य हो जाता है तो मंत्र कितना उचित-अनुचित है, इस ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। क्योंकि भक्ति साधना में मंत्र भावना के अनुसार फलित होता है।

कुण्डलिनी तथा चक्रों के जागरण में कौन-कौन से खतरे निहित हैं ?

कुछ लोग मानते हैं कि चक्रों के जागरण में कुछ खतरे निहित हैं। परन्तु हम ऐसा नहीं मानते। मेरा विश्वास है कि मानव जीवन में चक्रों का जागरण अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना है। जब पर्वतारोही माउन्ट एवरेस्ट की चोटी पर चढ़े, तो पूरा संसार आनन्द से झूम उठा, परन्तु उसके पहले अनेकों लोग वहां पहुंचने में असफल हुए। कितने अपने जीवन से हाथ धो बैठे। आप बिना कुछ खोये पाना चाहते हैं ? जीवन में हर बात उतनी सहज नहीं जितना कि चाय पीना और चॉकलेट खाना।

जब आप ध्यान करते हैं तो कहां जाते हैं ? आपकी चेतना आपको कहां ले जाती है ? क्या आप उसकी यात्रा का मार्ग जानते हैं ? नहीं। आप ऐसे रास्ते पर चलते हैं जिसकी आपको कोई जानकारी नहीं रहती। वह मार्ग दिखाई नहीं पड़ता। यह भी संभव है कि आप उस मार्ग में हमेशा के लिए भटक जायें। खैर, यदि आप जीवन में कुछ प्राप्त करना चाहते हैं, सर्वोच्च अनुभव प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको किन्ही भी संभावी परिस्थितियों के लिए तैयार रहना पड़ेगा।

परन्तु सामान्य बोलचाल की भाषा में यह पूछना स्वाभाविक है कि कुण्डलिनी जागरण में कौन से खतरे निहित हैं ? मेरी राय में इसमें कोई खतरा नहीं है, बल्कि इससे कहीं बड़े खतरे हमारे दैनिक जीवन में निहित हैं। जैसे एक बार जब मैं जुम्बोजेट से भारत वापस आ रहा था तो उसके ब्रेक ने अचानक काम करना बंद कर दिया। जब भी आप सड़क पार करते हैं, तो उसमें खतरा रहता है; क्योंकि किसी भी समय आप दुर्घटना

का शिकार हो सकते हैं। दैनिक जीवन के खतरों की तुलना में कुण्डलिनी जागरण के खतरे अत्यन्त नगण्य हैं। बल्कि मैं कहूंगा कि इसमें कोई खतरा नहीं है, बल्कि पाना ही पाना है। परन्तु कुण्डलिनी जागरण के पूर्व कुछ तैयारी आवश्यक है, जो साधक को अवश्य करनी चाहिये। इसके अन्तर्गत हठयोग, मंत्र जप, गुरु और इष्ट के प्रति समर्पण, शरीर का शुद्धिकरण और आसनों में स्थिरता लाना आदि अत्यावश्यक है। एक बार इतना कर लेने के बाद आप निश्चित होकर उच्च साधनाओं का अभ्यास कर सकते हैं।

क्या महिलाओं को क्रिया योग के कुछ अभ्यास नहीं करने चाहियें ?

मैं मानता हूं कि कोई भी व्यक्ति क्रियायोग के अभ्यास के लिए अयोग्य नहीं है, यह बात अलग है कि यदि आपके पास समयाभाव है या आपके पास शारीरिक कमजोरी है तो आपको कुछ अभ्यास नहीं करने चाहियें। महिलाओं के रजोकाल में तो क्रियायोग तथा विशेष रूप से महामुद्रा और महावेध मुद्रायें निश्चित ही बहुत आवश्यक हैं। क्योंकि इस काल में आमतौर पर महिलायें उदासी तथा भावनात्मक असंतुलन का अनुभव करती हैं। क्रियायोग के कुछ उपयुक्त अभ्यास उन्हें इन तकलीफों से मुक्ति दिलाते हैं।

हमें सामान्य बुद्धि का उपयोग करना चाहिये। यदि शरीर रुग्ण या कमजोर है अथवा समय की कमी हो तो कुछ ही अभ्यास जैसे महावेध तथा महामुद्रायें ही करनी चाहियें। क्योंकि इन दो महामुद्राओं को क्रियायोग का प्राण कहा जाता है। यदि किसी कारणवश आप सभी क्रियाओं का अभ्यास न कर पायें तो इन मुद्राओं को ही अवश्य करें।

हम किस प्रकार चक्रों के प्रति अधिक सजग होते हैं ?

चक्रों की चेतना का सीधा संबन्ध साधक के आध्यात्मिक विकास तथा चेतना शुद्धि से है। जब आध्यात्मिक साधनाओं द्वारा चेतना शुद्ध होती है, तो चक्रों के प्रति सजगता सहज रूप से बढ़ने लगती है। जब आप किसी चक्र के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सजग होते हैं, इसका सीधा अर्थ यह होता है कि वह चक्र विशेष आपके आगामी विकास का प्रस्थान बिन्दु होगा।

बिन्दु चक्र और विशुद्धि चक्र में क्या संबन्ध है ?

बिन्दु चक्र में अमृत का उत्पादन होता है। वास्तव में इस चक्र का सही नाम "बिन्दु विसर्ग" है, परन्तु हम इसका संक्षिप्तीकरण करके उसे केवल "बिन्दु" कहते है। बिन्दु शब्द का अर्थ बूंद होता है तथा विसर्ग का अर्थ छोड़ना होता है। अतएव बिन्दु विसर्ग का अर्थ होता है जहां से अमृत टपकता है। परन्तु हम उसको उसी रूप में प्रयोग में नहीं ला सकते, क्योंकि उसमें अमृत तथा विष दोनों ही तत्त्व युक्त रहते हैं। अमृत तो अमृतत्व प्रदान करता है, परन्तु विष प्राणों का हरण कर लेता है। अतः यह अमृत विशुद्धि चक्र में पहुंचता है जहां उसका शोधन होता है। अतः विशुद्धि चक्र को शोधनशाला कह सकते हैं, जहां विषयुक्त अमृत से विष को पृथक किया जाता है। शोधन

के पश्चात ही योगी ललना चक्र में खेचरी मुद्रा द्वारा अमृत को आत्मसात् कर सकता है।

क्या कुण्डलिनी योग तथा क्रिया योग में कोई बुनियादी अन्तर है ?

कोई भी अभ्यास जो कुण्डलिनी के जागरण में सहयोगी होता है, कुण्डलिनी योग के अंतर्गत आता है। इसलिए हम क्रियायोग को कुण्डलिनी योग भी कह सकते हैं। मानव शरीर के मूलाधार चक्र में शक्ति का अत्यन्त प्रभावी मूल स्रोत स्थित है। इस शक्ति को ही कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। जब शक्ति जागृत होकर ऊपर चक्रों में आरोहण करते हुए मस्तिष्क में पहुंचती है तो उसे ही आत्मसाक्षात्कार कहते हैं। वास्तव में देखा जाय तो योग के समस्त अभ्यासों का एक मात्र लक्ष्य कुण्डलिनी का जागरण ही है। क्रियायोग के अभ्यास द्वारा इस शक्ति को जागृत किया जा सकता है। इसके लिए प्राणायाम के उच्च अभ्यास, एक बिन्दु पर सतत् ध्यान, मंत्रजप तथा अन्य अनेक अभ्यास भी कारगर सिद्ध होते हैं। कुण्डलिनी जागरण के लिए प्राणायाम का अभ्यास पगडंडी का द्रुतगामी पथ कहा जाता है। परन्तु यह न तो सरल है और न ही सुरक्षित। इस कारण कुण्डलिनी जागरण हेतु हम प्राणायाम पगडंडी के अनुसरण की राय किसी को एकाएक नहीं देते। मंत्रजप सहज तथा सुरक्षित उपाय है, परन्तु उसमें समय अधिक लगता है। प्राणायाम तथा मंत्रजप के बीच का रास्ता क्रिया योग है। इसके अभ्यास से आपको पूर्ण संतोष प्राप्त होगा। यह शरीर नाड़ी तथा प्राण का शुद्धिकरण कर प्राणशक्ति को जागृत करता है। इसलिए कुण्डलिनी योग में सफल अभ्यास के लिए क्रियायोग संक्षिप्त सुरक्षित तथा वैज्ञानिक उपाय है।

कुण्डलिनी का जागरण हुआ या नहीं, इसको किस प्रकार जाना जाय ?

जब कुण्डलिनी का जागरण होता है तो मनुष्य की बुद्धि परिमार्जित हो जाती है। उसका अज्ञान साफ हो जाता है एवं उसमें बौद्धिक विवेचना की शक्ति बढ़ जाती है। इसलिए जब साधक की कुण्डलिनी जागती है, उसको मालूम पड़ता है कि मेरी कुण्डलिनी जग गयी है तो इस अन्तर्ज्ञान के साथ-साथ उसमें एक और क्षमता का भी उदय होता है; जिससे वह यह भी जान जाता है कि अमुक व्यक्ति की कुण्डलिनी जागृत है या सुषुप्त। जिस समय मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी का जागरण होता है, साधक उस समय उन्मनी अवस्था में रहता है। उन्मनी का मतलब—उस समय उसकी चेतना उसी प्रकार अधर में लटकी रहती है जिस प्रकार पक्षी डाल पर। संतों ने कहा है—

"अधर डाल पर हंसा बैठा चुगता मुक्ता-हीर।
आनन्द चकवा केलि करत है मानसरोवर तीर।।"

यह कुण्डलिनी जागरण की अवस्था है। उन्मनी अवस्था में साधक बिना किसी बाह्य नशे के नशे जैसी अवस्था में रहता है।

दूसरी बात—कुण्डलिनी जागरण के समय प्राणों का आवेश होता है। जब उसके

शरीर में प्राण का आवेश होता है, उसकी चित्त-वृत्तियां अपने आप ऐसी रुक जाती हैं कि उसे कुण्डलिनी से संबन्धित चक्रों का स्पष्ट दर्शन होता है और जब कुण्डलिनी मूलाधार से क्रमशः स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत और आज्ञा चक्र की ओर धीरे-धीरे ऊपर उठती है, साधक को न केवल आन्तरिक या बाह्य अनुभव होते हैं, बल्कि उसके अन्दर सामर्थ्य के अनेकों स्रोत भी फूट पड़ते हैं। किसी में कवित्व-शक्ति का जागरण होता है, कोई चित्रकला में पारंगत हो जाता है, कोई विद्वान् हो जाता है, कोई वक्ता बन जाता है तो कोई महान संगीतज्ञ बन जाता है। इस प्रकार एक के बाद एक, कई प्रतिभाओं का स्फुरण हो जाता है। इसके अलावा कुण्डलिनी जागरण के बाद अलग-अलग चक्रों पर उसे आत्मपरक अनुभूतियां भी मिलती हैं। जब मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी का जागरण होता है, साधक में कामशक्ति का उदय होता है और स्वाधिष्ठान में कामशक्ति का उद्दीपन। मणिपूर में कुण्डलिनी के आने पर साधक में भोजन एवं भोग की प्रवृत्ति का उदय होता है और अनाहत में प्रेम, करुणा, भक्ति, दया, माया आदि का उदय। विशुद्धि चक्र में आने पर उसकें शरीर में जर्जरता के लक्षण अथवा मृत्यु से संबंधित लक्षणों का अभाव होने लगता है—"न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।" बुढ़ापा दूर होने लगता है, शरीर नीरोग होने लगता है मानों उसका शरीर योग-रूपी अग्नि के द्वारा निर्मल हो गया हो। इसके बाद जब कुण्डलिनी आज्ञाचक्र में जाती है तब साधक को देव दर्शन होता है। वहां उसे दिव्य प्रकाश का दर्शन होता है, ८४ सिद्धों, ६४ योगिनियों एवं योगियों का दर्शन होता है। इसके बाद कुण्डलिनी सीधे ऊपर सहस्रार चक्र की ओर चली जाती है। इस प्रकार जब हम साधना काल में विभिन्न अनुभूतियों के रास्ते से होकर गुजरते हैं, तो हमें मालूम हो जाता है कि हमारी कुण्डलिनी जाग गयी है, या नहीं।

प्रश्न : क्या मूलाधार चक्र में स्थित और आज्ञा चक्र में स्थित ॐ में कोई विशेष सम्बन्ध है।

कुण्डलिनी मूलाधार में साढ़े तीन फेरा डाल के रहती है। वह जो फेरा है, वह जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति का प्रतीक है। ॐ में भी इसी प्रकार के फेरे होते हैं। एक फेरा ॐ के ऊपर का होता है, दूसरा नीचे में है तथा तीसरा फेरा है उसकी पूंछ और अन्तिम फेरा जो है वह है चन्द्र बिन्दु। इस चन्द्र बिन्दु का सम्बन्ध है देश काल और वस्तुओं से। ॐ में जो तीन फेरे हैं, वे देश काल और वस्तु के प्रतीक हैं। इस चन्द्र और बिन्दु को हम मात्रा कहते हैं। यह जो मात्रा है वह तुरीयावस्था का प्रतीक है, या देश काल और वस्तु के परे की स्थिति का सूचक है। मूलाधार चक्र का और आज्ञाचक्र का एक दूसरे से परस्पर सम्बन्ध है। मूलाधार चक्र पर जागृति हो तो उसका प्रभाव पहले आज्ञाचक्र पर पड़ता है। आज्ञाचक्र पर प्रभाव पड़ने के बाद यह जो प्राणशक्ति है, वह सहस्रार की तरफ जाती है और सहस्रार के केन्द्रों को जागृत करती है, लेकिन बात दोनों एक ही है।

साधना करने के लिए कौन-सा समय उपयुक्त है ?

साधना करने के लिए सबसे उत्तम समय ब्राह्म मुहूर्त है। ४ बजे से ब्राह्म मुहूर्त शुरू होता है। इसको अमृत बेला भी कहते हैं। इस समय हमारे शरीर में अमृत झरता है। शरीर की बात बोल रहा हूं। किन्तु सबेरे क्यों नहीं उठा जाता है, इसका भी एक कारण कि हम दिन भर के कार्यों के कारण थके रहते हैं, मन से थके रहते हैं और हमको पहले प्रहर में, दूसरे पहर में और तीसरे पहर में नींद अच्छी नहीं आती। गाँव में पहले लोग आठ बजे सो जाते थे, इतने थके रहते थे कि सिर रखा भागे अन्दर और आराम से चार बजे उठ जाते थे। अब नींद के लिये कितना प्रयत्न करना पड़ता है। कोई जप कर रहा है, कोई पैर दबवा रहा है, कोई श्वास पर ध्यान कर रहा है, कोई गोली खा रहा है क्योंकि हम सोना चाहते हैं मगर नींद नहीं आती। हम सोने की कोशिश करते हैं इसलिये हमें जो निद्रा आती है वह पूर्ण नहीं होती और प्रातः काल उठने में आलस्य बना रहता है। इसीलिए रात्रि में सोने से पूर्व शवासन में या जप करके सोना चाहिये। मन हलका रहेगा तो खुद नींद खुल जायगी।

कौन-सी साधना कब करनी चाहिए ?

जो लोग प्रवृत्ति के मार्ग में हैं उन्हें अलग साधनायें करनी चाहियें और जो लोग प्रवृत्ति मार्ग में नहीं हैं निवृत्ति मार्ग में हैं उन्हें अलग साधनायें करनी चाहिएं। दोनों के लिए दो नियम हैं। साधना चुनने का मतलब होता है, एक रास्ते से चलना। यदि रोग निवारण हेतु साधना करते हो तो भी साधना चुननी पड़गी और यदि आत्मप्रकाश को प्राप्त करने हेतु साधना करते हों तो भी साधना चुननी पड़ेगी। अनेकों साधनाओं के करने से कुछ अधिक प्राप्त होगा यह सोचना गलत है। हम तो मानते हैं कि तुम लोग शुरू में कई प्रकार की साधनाओं को करके एक तजुर्बा प्राप्त कर लो। तब बाद में अनुमान लगाओ कि अपने लिए कौन-साधना फिट बैठेगी। दुकान में जाकर १० साड़ी उठा करके देख लो, सब तो लेने की जरूरत नहीं है, अपने पसन्द की एक चुन लो, उसी प्रकार त्राटक, नादयोग, योगनिद्रा, जप, अजपाजप, क्रियायोग इत्यादि सब साधनाओं का तजुर्बा ले लो अब उनके बाद अंदाज लगाओ, अनुमान लगाओ कि कौन-सी साधना फिट बैठेगी। समय को देखते हुए, शरीर को देखते हुए और मन की इच्छा को देखते हुए और अपनी बुद्धि को देखते हुए भी, कोई एक साधना चुन लो। उन सबको देखते हुए एक छोटी-सी साधना जो कम से कम समय में की जा सके और जिसको तुम चाहो घंटा दो घंटा भी खींच-खांच कर ले जाओ, ऐसी साधना करनी चाहिए। दूसरी साधना को उसमें जोड़ने का समय न मिले। ये मेरा जनरल स्टेटमेन्ट है। अब विशेष स्टेटमेन्ट देता हूं। प्रारम्भ में साधक को थोड़ा-थोड़ा करके अनेक साधनाएं करनी चाहिये। जैसे-जैसे साधना में मन लगने लगे, एक-एक करके ड्राप करते जाना चाहिये और उसका टाइम दूसरी साधना में दे देना चाहिए, जब काफी समय हो जाए साधना में मन डूबने लगे और कोई एक साधना करते-करते बहुत आनन्द आ जाय और दूसरी साधना में लेट होने लगे तब समझना सब चीजों को छोड़ने का समय है। आसन कर रहे हैं, उसके पहले

ॐ में बैठ गये और मजा आ गया। 'ॐ' ४०-५० बार कर लिया आसन में लेट हो गया इसका मतलब है अब अन्य साधनाओं को ड्रॉप करने का टाइम आ रहा है। अब केवल एक साधना में लगो।

क्या साधक के लिए विशेष गुणों का होना जरूरी है ?

हाँ जरूरी है। साधना करने से लोग अपने को विशेष समझने लगते हैं और बाकी सबको अपने से ओछा समझते हैं। इसलिए साधना करते समय विद्या, विनय, शील, ये तीन चीजें आवश्यक होती हैं। साधना में विनय भाव होना चाहिये और ऐसा नहीं रहेगा तो धन प्राप्ति में जैसे अहंकार होता है या विद्या की प्राप्ति से अहंकार होता है, वैसे ही साधना की प्राप्ति में भी अहंकार होगा। सोचते हो कि बगल में पड़ोसी-वड़ोसी हैं वे अपना जीवन व्यर्थ गंवा रहे हैं, मैंने अपना जीवन बना लिया, ये सब भाव आने लगता है।

क्या साधना के अनुभवों को दूसरे को बताया जा सकता है ?

साधना में जो अनुभव हो उसको बकबक नहीं करो और साधना में अनुभव हो उस पर ख्याल भी मत करो। ज्यादा चिंतन भी मत करो। उपलब्धियों की अपेक्षा मत करो। तब जा करके अन्तर्मुखी साधना सफल हो सकती है, अगर अनुभवों को बतलाने लगेंगे तो जिस लक्ष्य को लेकर के हम आगे चलते हैं वह लक्ष्य थोड़ी देर के बाद तिरोहित हो जाता है। उसके स्थान पर अनुभवों की शृंखला आती है और अनुभवों की वह शृंखला कभी-कभी तो इतनी मधुर होती है, कभी-कभी इतनी रसयुक्त होती है कि बार-बार उसी को देखने को जी चाहता है और बार-बार हम उसी की बात करते हैं कि मैंने तो ऐसा देखा, तीन महीना पहिले मुझे प्रकाश दिखता था, अब तो नहीं दिखता। अब हम चले थे कुछ पाने को मिला कुछ और। भटक गये न इसमें। अनुभवों की शृंखला हमें जो साधना की अवस्था में प्राप्त होती है उसको बतलाने की कोई जरूरत नहीं है। हमारे जान-पहचान के अनेकों साधु-संत हैं, जिनकी अवस्था अच्छी और ऊंची है, हम जानते हैं मगर उनमें कुछ लोग ऐसे हैं जो मुझसे पूछते हैं। भई, ये अनुभव क्या चीज है ? मेरे को तो आज तक एक भी नहीं हुआ। इसका अर्थ यह नहीं कि वे गलत कर रहे हैं। मैं जानता हूं, वे ऊंची अवस्था में हैं।

अनुभवों की जो शृंखला होती है, वह चित्त शुद्धि तक रहेगी। साधना की अवस्था में आपको जो कुछ दिखलाई देता है वह आपका पात्र शुद्ध होने तक ही दिखेगा। जब तक तुम्हारा मन संस्कार रहित न हो जाएगा, जब तक तुम्हारे कर्म के जो बीज हैं वे निस्तेज नहीं हो जायेंगे तब तक यह अनुभवों की शृंखला चलती ही रहेगी क्योंकि अनुभवों की शृंखला का सम्बन्ध संस्कारों से है। बीज प्रकट हुआ और वैसे ही पात्र धुल जायगा, अनुभवों का आना समाप्त हो जायगा, कुछ नहीं दिखेगा।

दूसरी बात, अनुभवों की ये जो शृंखला साधना में उत्पन्न होती है इसके प्रति अपने मन में विचार होना चाहिए कि ये अनुभव सब नाशवान है। आज हमको एक चीज

दिखती है, कल दिखेगी, परसों दिखेगी, उसके बाद वह समाप्त हो जाएगी। अविनाशी अनुभव एक होता है—जो आंतरिक है, शाश्वत है। बाकी तुमको ध्यान की अवस्था में जो कुछ दिखेगा वह एक न एक दिन मिट जाएगा। अगर आप ज्योति का ध्यान करते हो तो वही रहना चाहिए और यदि आप कमल का ध्यान करते हो तो वही रहना चाहिए। तुम्हारा जो इष्टदेव है, तुम्हारा जो ध्येय तत्त्व है, जो भी निश्चित हुआ है, सबका अलग-अलग हो सकता है, बस उसको अपने सामने रखो और उसको सामने रखने से तुमको एक, दो, तीन, पांच, दस अनुभव आयेंगे तब अपने मन में बोलो—मैं तो इसके लिए नहीं बढ़ रहा हूं। मुझे तो ज्योति देखनी है, तुमको थोड़े ही देखना है। ये ऐसा हुआ जैसे कि मान लो तुम रामेश्वरम् जा रहे हो। तुम यहां से गये, नागपुर में तुम्हें ट्रेन बदलनी है, शाम को ट्रेन पहुंची। ट्रेन तो थी नहीं, तुम एक अच्छे होटल में चले गए। बहुत सुन्दर होटल है। होटल तो सुन्दर था ही उसका मालिक उससे भी अच्छा। इतना सेवाभावी था, इतना मेहमान नवाज था कि वह बोला—आप जाइए मत, रह जाइए यहां, उसका घर, उसका व्यवहार, उसका चाल-चलन, उसके बाल-बच्चों का व्यवहार इतना अच्छा था कि लगा कि यह बड़ा अच्छा आदमी है। यहीं रह जाना चाहिए। रहोगे क्या? अगर तुमको रामेश्वरम् की याद आएगी, तब तो तुम रहोगे नहीं और कहीं उसके साथ फंस गए तो गया रामेश्वरम्। तब तो रामेश्वरम् के लिए भोपाल से निकले, नागपुर में अटक गए। उसी तरह हम लोगों का होता है कि साधना करते हैं ज्योति के लिए, साधना करते हैं शिव लिंग के लिए, साधना करते हैं गुरु को देखने के लिए, साधना करते हैं किसी शब्द को जानने के लिए और बीच में जो अनुभवों की शृंखला आती है बड़ी लटपटी, उसी में सब लोट-पोट होकर के फंस जाते हैं। कहते हैं—स्वामीजी, मैं जब से ध्यान करता हूं तब से मेरे को बड़ा अच्छा लगता है, बहुत-बहुत चीज दिखती है। ये तो नागपुर में फंस गया जाकर के।

महात्मा लोग क्या कहते हैं? जिस तरह से बंदूक की गोली बंदूक से निकल कर सिवाय अपने लक्ष्य के दूसरी जगह नहीं लगती है। धनुष से निकला हुआ तीर अपने लक्ष्य पर ही जाता, दूसरी तरफ नहीं जाता। 'प्रणवो धनुः', 'ॐ धनुष है।' 'शरो हि आत्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।' ये धनुष है, ये बाण है, ये लक्ष्य है। ईश्वर लक्ष्य है। अप्रमत्त (प्रमाद रहित) होकर उसको देखना चाहिए। अर्जुन से द्रोणाचार्य ने पूछा कि क्या देखते हो? दुर्योधन से भी पूछा—क्या देखते हो? ॐ मालुम है न सबको। हम तुमसे बोलते हैं कि क्या देखते हो? तुम बोलते हो ज्योति। क्या देखते हो? स्वामीजी, रंग दिखलाई देता है; गाछ दिखलाई देते हैं, देवी-देवता दिखलाई देते हैं; ऋषि मुनि दिखलाई देते हैं; दृश्य-सरोवर दिखलाई पड़ते हैं। हम बोलते हैं नहीं, वह ठीक नहीं है। केवल जो तुम्हारा लक्ष्य है वही दिखना चाहिए। इसके अलावा बाकी सबको दुर्लक्ष्य करना होगा।

एक व्यक्ति को मैंने कहा—बिन्दु का ध्यान करो। निराकार वाले थे। आगे एक बार शंकर जी आ गए ध्यान में। मेरे से बोले कि भाई, मैं बिन्दु का ध्यान करता हूं तो शंकरजी आ गए। मैंने कहा—तुम तो निराकार वाले हो न, हटाओ शंकरजी को कैसे

हटाएं। असल में डर लग गया ना। बिन्दु तो एक जड़ तत्त्व है। इसको तो हटाना कोई बड़ी बात नहीं है और शिवजी इतने बड़े देवता हैं, कहीं हटा दिया तो हालचाल मुश्किल कहीं बाद में तंग न करने लगे। वह डर गए। जब ऐसी स्थिति होती है तो क्या किया जाए ? तो मैंने उनसे कहा—देखो भाई, तुम अब निराकार को छोड़ दो। तुमसे निराकार जमने का नहीं, क्योंकि तुम तो बिन्दु की अपेक्षा शंकरजी को श्रेष्ठ मानते हो। मेरे को बोले—स्वामीजी, बिन्दु को मैं छोड़ सकता हूं पर मेरे को लगता है कि शंकरजी को छोड़ने से कहीं मुश्किल न हो जाए, बाल-बच्चे बीमार पड़ जायें। तो मैंने कहा—तुम अब निराकार को छोड़ो आज से। बिन्दु-बिन्दु के चक्कर में मत पड़ो। सीधे तुम शंकरजी की उपासना करो। अब अगली बात ध्यान से सुनिए। तो शंकरजी पर ध्यान करने लगे, तो बिन्दु भी सामने आने लग गया।

ये ध्यान की बड़ी विचित्र स्थिति है और इसी में साधक लोग भटकते हैं। अंग्रेजी में बचपन में मैंने एक किताब पढ़ी थी। इसका नाम था—पिलग्रीम प्रॉब्लम्स। एक तीर्थ-यात्री चल रहा है, पहाड़ पर चलता है। कहीं पर उसको सुन्दर-सुन्दर उपवन मिलते हैं। वह मोहित हो जाता है। कहीं पर उसको सुन्दर-सुन्दर प्राणी मिलते हैं, वह मोहित हो जाता है। कहीं पर उसको रसयुक्त फल मिलते हैं, तो मोहित हो जाता है कहीं-कहीं पर उसको निद्रा आ जाती है सुखद छाया में, तो सोचता है कि चलो भाई अब यहीं पड़े रहें। मगर जैसे-तैसे उसको अपने लक्ष्य की याद आती है ? तीर्थ की याद आती है तो ले देकर उस माया मोह से वह अपने को खींचकर अन्त में पहुंच जाता है, जिसका नाम है ब्रह्म-पुरी, आनन्द नगरी। उसीप्रकार साधना करने वालों को साधना के बीच में कई प्रकार के अनुभव देखने को मिलते हैं। शरीर में गर्मी लगती है, ठंडी लगती है। कभी लगता है कि कुछ चल रहा है। कभी लगता है कि कुछ उड़ रहा हैं, कभी लगता है एकदम आनन्द आ रहा है। कभी लगता है मीठा-मीठा रस बह रहा है। हजारों अनुभव इन सबको तुम एक किनारे कर दो। ये सब व्यर्थ के अनुभव हैं और कुछ नहीं।

कान का रोग है अथवा कोई और चीज है ?

एक आदमी, जो पांच-छः साल से साधना कर रहा है, दाहिने कान में झुनझुन की आवाज आ रही है। वह जानना चाहता है कि ये झुनझुनाहट जो होती है ये क्या है ?

ये कान का रोग नहीं है। साधना करते-करते एक-एक इन्द्रिय माध्यम बनती है इसमें किसी-किसी व्यक्ति की दाहिने तरफ कान में एक ऊंची आवाज आती है और उसे हम लोग कहते हैं कर्ण घंटा। उसे कम समझ के कारण लोग पिशाच कहते हैं। यह पिशाच क्या है। पिशाच मतलब कोई बाहर वाला नहीं, अंदर का ही है। अन्दर से कोई जागता है उसको पिशाच कहते हैं। उसका नाम है कर्ण-पिशाच। और ये कर्ण-पिशाच की साधना होती है क्लियर माइन्ड में। उससे कान में चीख सी सुनाई देती है, बाद में घंटी सुनाई देती है। उसके बाद कान के अन्दर में स्पष्ट आवाज आती है, सुनाई देता है। यदि आदमी खराब है तो लगता है बदमाश आदमी बैठा है अन्दर में। सब सुनाई देता है उसको। आपने देखा है कर्ण-पिशाच वाले जब बात करेंगे तो इधर ख्याल

करेंगे उनकी आंखों से मालूम पड़ेगा कि वह कहां ख्याल करते हैं। बड़े क्लियर माइण्ड होते हैं वह लोग। क्लियर माइण्ड का मतलब सामने की चीज का एक्सरे उनको स्पष्ट मालूम पड़ता है। वह साधना कोई गलत रास्ते पर नहीं की जा रही है, वह शुद्धि का रास्ता है।

मूलाधार में कुंडलिनी का स्थान बतलाते हैं, कई लोग कहते है वहां शिवलिंग है ?

ठीक है इसमें कोई हर्ज नहीं। कुछ लोग उसको देवी का स्थान मानते हैं। अपने यहां उसको शिवलिंग मानते हैं। तीन लिंग होते हैं—आधारलिंग, इष्टलिंग, ज्योतिर्लिंग। नीचे वह आधार लिंग हुआ, यहां धूम्रलिंग होता है। इसी पर कुण्डलिनी साढ़े तीन फेरे डाले बैठी है।

शिव-चेतना

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

शिव की पूजा अब केवल भारत तक ही सीमित रह गई है। प्राचीनकाल में इसकी प्रथा सारे संसार में प्रचलित थी। ईसवी सन् आरम्भ होने के बहुत पहले से ही पूर्व व पश्चिम के बहुत से देशों में एक अण्डाकृति प्रतीक की पूजा के रूप में शिवपूजा की धार्मिक प्रथा रही है। मैक्सिको और लैटिन अमेरिका के विभिन्न भागों में हुई पुरातात्विक खोजों ने इस प्राचीन पूजा-प्रथा पर विशेष प्रकाश डाला है। मक्का का काबा भी, जो इस्लाम धर्म में सर्वपूज्य है, एक अंडाकार पत्थर यानी शिवलिंग ही है।

शिव का शाब्दिक अर्थ है उच्च चेतना। इसे और भी दूसरे कई तरह से समझा जा सकता है। शिव का अर्थ पुरुष, परमोच्च तत्त्व या सृष्टि का आधार भी होता है। सत्य व सृष्टि का स्वरूप दो तथ्यों पर निर्भर करता है। एक है शिव-शुद्ध, अपरिवर्तनशील चेतना और दूसरा शक्ति यानी कर्म द्वारा शाश्वत विकास। शिव व शक्ति के परस्पर संयोग से सृष्टि होती है, ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है।

प्रकाशस्तम्भ

योगाभ्यास द्वारा दैहिक व मानसिक चेतना स्तर का अतिक्रमण होने पर विशिष्ट आध्यात्मिक अनुभव होते हैं। सफल योगियों को संप्राप्त ये अनुभव ही प्रभामंडल प्रकाशस्तंभ या ज्योतिर्लिंग के संकेत हैं। मुहम्मद, जोरोस्तर या ईसाई संतों की जीवनी के प्रसंगों में इस ज्योतिर्लिंग का उल्लेख मिलता है। इस प्रकाश का अनुभव हर साधक को एक सदृश नहीं होता। कभी धूम्रमंडल, कभी धूम्रमिश्रित ज्योति, कभी अण्डाकार और कभी खंभाकार। योगियों द्वारा प्राप्त प्रज्ञा के इन विभिन्न अनुभवों को ही हम शिव चेतना कहते हैं।

उच्च चेतना का प्रतीक

संस्कृत शब्द 'लिंगम्' के दो विशेष अर्थ होते हैं। साधारण प्रयोग में पुरुष शरीर के प्रजनन अंग को लिंगम् कहते हैं। अध्यात्म में कारण शरीर का बोधक है लिंगम्। शिवलिंग के सही अर्थ के बारे में बहुतों को भ्रान्ति है। पश्चिमी विद्वानों ने अपनी पुस्तकों में इसे शिव का लिंग माना है। यह मान्यता एकदम गलत है। इसे विपर्यय धारणा कहते हैं। वस्तुत: उच्च चेतना का आध्यात्मिक प्रतीक है शिवलिंग। लिंगम् का शाब्दिक अर्थ है सूक्ष्म प्रतीक।

मानव के मन का और उसकी संवेदना का यथार्थ स्वरूप क्या है? विश्व भर के कलाकारों ने अपनी कला के माध्यम से मानवीय संवेदना को अभिव्यक्ति करने की चेष्टा की है। भय, प्रेम, घृणा या हर्ष को हम कैसे अभिव्यक्त करें कि उनकी संवेदना का अनुभव दूसरे लोग भी कर सकें? ये भावनाएं साकार हैं अथवा निराकार? हां, उसके आकार अवश्य हैं, किन्तु वे उसी रूप में ग्राह्य नहीं हैं। उनके लिए हमें संकेत, प्रतीक, चित्र बनाने होंगे। इन्हीं प्रतीक संकेतों द्वारा हम भावनाओं को समझ और समझा पाते हैं।

अब बताओ, तुम्हारा निज स्वरूप क्या है? देहाध्यास से ऊपर उठने पर तथा विचार जगत् के पार जाने पर, गंभीर ध्यानावस्था में हमारी चेतना का आकार कैसा रहता है? इन्हें प्रतीक के माध्यम से ही समझा जा सकता है।

मूलाधार से सहस्रार

कुंडलिनी योग के प्रतीक विज्ञान के अनुसार शिवलिंग के तीन भिन्न रंग होते हैं धूम्र, काला व प्रकाशित। चेतना के विकास अथवा शुद्धिकरण की स्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हैं ये तीन रंग। मूलाधार चक्र में धूम्रलिंग, आज्ञा चक्र में काला लिंग एवं सहस्रार चक्र में प्रकाशित ज्योतिर्लिंग है।

अविकसित मन वाले ध्यान के आरंभिक अभ्यासी को धूम्रमंडल के रूप में शिवलिंग का अनुभव होगा। वह दिखेगा, फिर गायब, फिर दिखेगा, फिर गायब: यह क्रम कुछ काल तक चलेगा। धारणा के अधिक गहरे अभ्यास में मन के कुछ स्थिर होने पर कृष्णवर्ण यानी काला शिवलिंग प्रकट होगा। इस कृष्ण वर्ण पर लगातार धारणा करते रहने से प्रकाशित चेतना में यह स्वयंभू ज्योतिर्लिंग प्रकटेगा, स्वयंभू अर्थात् खुद ही प्रकट हो जाने वाला। अस्तु, आज्ञा चक्र का काला लिंग ही उच्च अध्यात्म चेतना की कुंजी है, रहस्य है।

शिव का मानवीय स्वरूप

शिवलिंग की भांति, शिव भी मनुष्य में निहित उच्चात्मा का प्रतीक है जो सार्वभौम सत्ता का निमित्त कारण है। उनके मानव स्वरूप में भी शिव की प्रतीक मूर्ति मिलती है। संन्यासी सदृश एक आदमी—व्याघ्र चर्म धारण किये—उदासीन फक्कड़ जीवन, नित्य पद्मासन में स्थित, ध्यान समाधि में लीन! उनका संपूर्ण शरीर भस्म-विभूषित है। साधारण भस्म नहीं; वरन् श्मशान में जलाये मुर्दों के अवशेष भस्म। यह दिव्य संकेत है।

तपश्चर्या की अग्नि से संसारी वासनाओं का पवित्रीकरण। उनके सिर, गर्दन, भुजा व कमर के चहुं ओर फुफकारते सर्प आवेष्ठित हैं। ये उत्थित फन जागृत कुंडलिनी शक्ति के द्योतक हैं। उनके सिर पर शोभित जटा-जाल के कुंचित केश में बाईं ओर अर्द्ध चन्द्र, चतुर्थी का चन्द्रमा है। यह इड़ा नाड़ी का प्रतीक है। सिर में दाईं ओर गंगा तीव्रधारा से प्रवाहित हो रही हैं। यह पिंगला नाड़ी का प्रतीक है। शिव के सम्मुख एक कूर्म, कछुआ या कच्छप है जिसने अपने अंगों को अपने शरीर के अन्दर खींचकर छिपा रखा है। उसकी यह क्रिया योगी मन का प्रत्याहार है, जब वह अध्यात्म साधना में सूक्ष्म अंतर बिन्दु पर चित्त को एकाग्र करता है।

गंभीर ध्यानावस्था में अनुभूति उच्च चेतना के सांकेतिक प्रतीक रूप हैं ये सब उपरोक्त वस्तुएं। देह चेतना, बुद्धिचेतना, वस्तुचेतना, नाम व रूपचेतना से हट कर जब साधक अंतर्मुख हो जाता है, तब जो कुछ अनुभव में आता है, यह शिवचेतना है।

तीन दुर्ग

त्रिशूल और डमरू, ये दोनों शिव के साथ की बहुत महत्त्वपूर्ण चीजें हैं। मनुष्य के तीन शरीर हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर। ये तीनों शरीर तीन दुर्ग या त्रिपुर कहे गये हैं। इन्हें लौह, रजत व स्वर्ण काया अर्थात् त्रिकाया के रूप में जाना जाता है। इन्हीं तीन दुर्गों, त्रिपुर से आगे एक व्यक्ति है, जिसे पाना है।

त्रिपुरारि से मिलने हेतु इन तीनों दुर्गों को तोड़कर वहां पहुंचना होता है। शरीर मन व भावना के तीनों स्तरों को पार करना बहुत कठिन है। ये दुर्ग दुर्भेद्य है, क्योंकि देह, बुद्धि व अहं की चेतना को हम छोड़ नहीं पाते हैं। फिर व्यापक व असीम चेतना की अनुभूति कैसे होगी ? इन तीनों स्तरों को पार करके ही, त्रिपुरासुर का वध करके ही अपने प्रियतम त्रिपुरारि का दर्शन संभव हो सकता है।

तो, शरीर, मन और अहं भावना के ये तीन दुर्ग हैं। उनके स्तर अलग-अलग हैं। तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण से वे युक्त हैं। त्रिगुणात्मक होने से उनके गुण, हर काया में हैं। सबसे ऊपरी स्तर पर अज्ञान की निद्रा तमोगुण है। क्रियाशील जीवन में रजोगुण प्रधान होता है। ध्यान में सतोगुण रहता है। आलस्य, प्रमाद निद्रा, अकर्मण्यता की हालत में तमोगुण रहता है। मन जब गतिशील हो; वासना महत्त्वाकांक्षा, राग द्वेष, तृष्णा, क्लेशादि से पूर्ण हो तब रजोगुण की स्थिति। जीवन की निरर्थकता को समझकर मन जब शान्त, स्थिर व उद्वेग रहित हो जाता है, तब उसे सात्विक गुण की स्थिति कहेंगे।

त्रिशूल में तीन नोक हैं तीर की तरह। त्रिशूल तो तुम लोग जानते हो न। शिव मंदिर में जाकर देख लेना। इन्हीं तीन गुणों का भेदन करने के लिए यह त्रिशूल हैं। त्रिशूल से त्रिगुणों का प्रतीक अर्थ-बोध होता है।

डमरू की ध्वनि

ध्यानावस्था में एक विशेष ऊंची स्थिति में अंतःध्वनियां सुनाई देती हैं। ये अनेक प्रकार की हैं। नादयोग में इनका विस्तत वर्णन मिलता है। अनुभव का एक स्तर ही

नादयोग है । अनेक ध्वनियां अन्दर आती हैं । इन्हें नाद, अंतर्ध्वनि, अंतर्नाद, अंतर-संगीत अंतर्माधुरी आदि कहते हैं ।

इस नादानुभव के बारे में कई योगियों और तांत्रिकों ने बताया है । गहरे ध्यान में इन गुप्त अंत:ध्वनियों को कई साधकों ने सुना है और सुनते रहेंगे । बांसुरी, वीणा, मेघगर्जन या चिड़िया की आवाज आदि सुनी जाती है । माधकों ने अनुभवों को गीत, श्लोक और शास्त्रों में व्यक्त किया है । ध्यान की एक अवस्था में डमरू की आवाज एक संकेत है—चेतना के इस सीमित सोपान से उस असीम चेतना में आरोहरण का । त्रिशूल एवं डमरू वाह्य वस्तुएं नहीं, हमारी योगी चेतना के शुद्ध आंतरिक स्वरूप की सांकेतिक अभिव्यक्तियां हैं ।

शैववाद

भारत भर में शिवजी अतिशय लोकप्रिय हैं। शिव भक्तों का एक विशिष्ट संप्रदाय दर्शन और परम्परा है, जिसे शैववाद कहते हैं । इन सब प्रतीकों की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है शैववाद में । यह परम्परा काश्मीर व दक्षिण भारत में बहुत प्रबलता से प्रचलित है । इस दर्शन और प्रतीकशास्त्र पर सैकड़ों उपयोगी ग्रंथ लिखे गये हैं ।

भारत में शिव भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि सत्य को पाने के लिए सरलतम मार्ग है शिवपूजा । इसके बारह प्रमुख केन्द्र देश भर में मिलते हैं । इनमें से एक पशुपति-नाथ नेपाल में है । पशु का अर्थ है हमारी पशुवृत्ति और पति याने स्वामित्व । यह उस योगी (शिव) का आध्यात्मिक प्रतीक है, जिसने अपनी पाशविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण पा लिया हो ।

रामेश्वर दक्षिण भारत में एक ज्योतिष पीठ है । इन्हीं द्वादस पीठों में से एक बिहार में है—वैद्यनाथ धाम में जिसे बाबाधाम भी कहते हैं । इसकी लोकप्रियता इतनी है कि लोग इसे शिव का क्रिमिनल कोर्ट कहते हैं—वह न्यायालय, जहां शिकायतों की सुनवाई तत्काल होती है ।

जुलाई-अगस्त के महीनों में अगर बिहार आना हुआ तो देखोगे कि गरीब, अमीर, किसान, मरीज, स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े हर कोई, लाखों लोग, यहां तक कि नेपाल के महाराजा भी नारंगी रंग के विशेष वस्त्र पहिनते हैं । गंगा जी से जल लेकर उसे कन्धे पर रक्खे, नब्बे मील पैदल चलकर बाबाधाम में शिवजी पर चढ़ाते हैं । वहां शिवपूजा करते हैं, शिवलिंग का स्पर्श करते हैं । हजारों वर्षों से लाखों-करोड़ों लोगों द्वारा यह पूजा व स्पर्श की प्रथा चली आ रही है । यह है शिव की लोकप्रियता ।

आंतरिक अंधकार का साक्षात्कार

ये बारह तो प्रधान केन्द्र हुए । इनके अलावा भी हजारों शिव मंदिर देश भर में यत्र-तत्र सर्वत्र मिलेंगे । उन बारह स्थानों में उन्हें शिवलिंग नहीं कहते; ज्योतिर्लिंग कहते है । ज्योति अंधकार का विपर्यय है । क्या है यह अंधकार ? जहां कुछ भी न दिखे, सभी रंग व रूप तमस् से आच्छादित हो जाते हैं, अपने आपको भी देखना मुश्किल । और जब

प्रकाश आ जावे तो सब कुछ देख-जान सकते हो।

अच्छा, तो मनुष्य अंधेरे में है। उसे नहीं मालूम कि उसके बाहरी अस्तित्व के अन्दर और आगे क्या है। शायद स्वप्न के बारे में उसे थोड़ा-सा मालूम होगा। उसे क्या मालूम कि सजगता के और भी कई स्तर हैं। जिन्हें वह प्राप्त भी कर सकता है। मनुष्य के अन्तस् का क्षेत्र अंधकार से व्याप्त है। अपनी आंख मूंद लेने पर क्या देखते हो ? कुछ नहीं न ? और, मन्त्र जप वगैरह जप लेने पर कभी-कभी चलचित्र या टेलीविजन जैसा कुछ दिखाई दे जाता है, नहीं तो कुछ नहीं।

क्रोध आने पर हमें मालूम तो हो जाता है लेकिन उसे देख नहीं सकते। भय लगने पर अनुभव होते हुए भी उसके कारण का ठीक पता नहीं लगता। इसलिए कि वहां अंधकार है। प्रकाश रहने पर भय, घृणा, प्रेम सब भावों को देखा जा सकता है। कई बार हमें यह नहीं मालूम पड़ता कि हमारे मन में क्या है, क्योंकि लोग केवल सोचते हैं, देख नहीं पाते।

तो प्रकाश हमें चाहिये और उसका ज्ञान भी चाहिये। उस ज्ञान के प्रकाश में वस्तुएं दिखाई देने लगती हैं। तुम्हें अपने पशुस्वभाव, अध्यात्म-स्वभाव, मानसिक समस्याएं, अवरोध, निरोध सब कुछ दिखेंगे। तुम्हें अपनी सभी व्यक्तिगत चीजें मालूम होंगी, जिनको पहले कभी नहीं देखा था। यह सब कब और कैसे होता है ? प्रज्ञा के उदय से ही यह संभव है। यह प्रज्ञा-प्रकाश प्रसारित होता जाता है और वस्तुएं भी अधिक स्पष्ट होती जाती हैं। तब तुम केवल सोचते नहीं देखना शुरू करते हो।

इस भांति, जीवन की उच्च चेतना को भी देख सकते हो। ये द्वादश ज्योतिर्लिंग मनुष्य की प्रकाशित चेतना है। वर्ष भर दर्शकगण तीर्थयात्रा करके उनका दर्शन करते हैं। इनके दर्शनार्थ कोई भी समय अशुभ नहीं माना जाता।

शिव मंदिर के अंदर

शिव मंदिर की बाहरी सीमा मीलों तक फैली हो सकती है; किन्तु मंदिर तो अपने आप में बहुत संकीर्ण ही होता है। मंदिर में प्रवेश करते ही एक बैल मिलेगा। यह नन्दी बैल कहलाता है। मानव व्यक्तित्व के संपूर्ण अहं चेतना का प्रतीक। चित्र में शिवजी को एक बैल पर सवारी करते देखा होगा। यह वही वाहन है। बैल शिव पर सवार नहीं होता, शिव सवार होते हैं बैल पर। हम लोगों में यह बात ठीक उल्टी है, बैल हम पर सवार हो रहा है। यह बात समझने की है।

वह बैल संकेत है—स्वयं से हमारे प्रथम परिचय का। अध्यात्म की अंतर्यात्रा में प्रथम मुकाबला पशु से होता है, हमारी पशुवृत्ति से। यहां पर पशु माने उल्लू, बकरा, हिरण या घोड़ा नहीं; पशु हमारी चेतना की निम्न वृत्तियों का प्रतीक है।

फिर, मंदिर में अन्दर आपको एक अंडाकृति पत्थर मिलेगा। ये विशेष आकार वाले पत्थर नर्मदा नदी की सतह पर मिलते हैं। यह नदी मध्य भारत में से बहती हुई अरब सागर में जा मिलती है। मुझे मालूम नहीं, ये अंडाकार पत्थर वह नदी कैसे उत्पन्न

करती है। अनेक शिव मंदिरों में स्थापित ये लिंग उसी एक स्थान से, नर्मदा की सतह से जाते हैं।

लेकिन, वे बारह ज्योतिर्लिंग नर्मदा से नहीं लाये गये हैं। शिवलिंग दो तरह के मिलते हैं। नर्मदेश्वर लिंग और स्वयंभू लिंग। स्वयंभू लिंग स्वतः उत्पन्न हुए हैं, उन्हें कहीं से लाया नहीं गया। जहां पर वे प्रकट हुए, वहां से उन्हें हटाया नहीं गया; बल्कि उसी के चारों ओर शिवमंदिर का निर्माण कर दिया गया। नर्मदेश्वर लिंग को समारोह के साथ लाकर किसी मंदिर में प्रतिष्ठित किया जाता है।

शिवलिंग को एक वेदी पर स्थित करते हैं। उसके ठीक ऊपर जल से भरा एक ताम्र पात्र लटकता रहता है। बर्तन के एक छोटे छिद्र से बारहों मास और रात-दिन बूंद-बूंद जल शिवलिंग पर टपकता रहता है। मानव शरीर में निरंतर प्रवाहित अमृत की प्रक्रिया का यह प्रतीक रूप है। मानव की उच्च चेतना में अमृत बूंद झरता है, बिन्दु विसर्ग। यह हमारी चेतना को अविनाशी, अमर बनाता है।

शिवरात्रि—मिलन की रात

वर्ष में एक बार, शिव के भक्तजन अति विशिष्ट ढंग से शिवरात्रि मनाते हैं। शिव यानी उच्च चेतना। रात्रि यानी आत्मा की अंधेरी रात। शिवरात्रि की कथा बड़ी मनोरंजक एवं सारगर्भित है, रहस्यपूर्ण है।

हिमाचल की पुत्री पार्वती के साथ शिवजी का विवाह निश्चित हुआ। तिथि आ पहुंची। विवाह के लिए लड़के (वर) को लड़की (कन्या) के घर जाना पड़ता है। शिवजी अपने प्रियजनों के साथ पार्वती के बर्फीले राज्य में पहुंचे। वहां स्वागत की सारी तैयारी हो चुकी थी। सुन्दर नगर था और रूपवान नगरवासी। बारात की प्रतीक्षा हो रही थी। बच्चे विशेष खुश थे।

शिव दल के पहुंचते ही बच्चे दौड़े बारात देखने और देखते ही डर के मारे रोने-चिल्लाने लगे; कुछ तो बेहोश हो गये; कुछ चक्कर खाकर गिर पड़े; कुछ मजबूत बच्चे गिरते-उठते घर की तरफ भागे। अपने मकानों की छतों पर से बारात देखने वाली कई स्त्रियां वहीं मूर्छित हो गईं, क्योंकि शिव एक बैल पर सवार थे। अपने गले, कमर और हाथ में नाग सांप लपेटे हुए थे और सारे शरीर पर भस्म रमाये थे। शिव के पीछे उनके गण भूत, पिशाच सब चल रहे थे। उनमें से कइयों के पेट में मुंह था, कई एक पैर वाले थे, तो कई तीन पैर वाले। वे सब कुदरत की खिलवाड़ थे। कैसी अनोखी बारात थी।

सब ने यह अजीबोगरीब समाचार पार्वती की मां को सुनाया। बोले—'तुम्हारा जामाता (दामाद) तो भयंकर विकराल है और उसके साथी लोग एकदम घिनौने हैं।'

पार्वती की मां को सहसा विश्वास नहीं हुआ। बाहर जाकर उन्होंने खुद देखा और घबरा गईं। मैं इस मनहूस को अपनी बेटी कदापि नहीं दूंगी—ऐसा फैसला उन्होंने कर लिया। सारे नगर में हंगामा मच गया। हर आदमी हैरान था। इधर शिवजी अपने दल सहित बढ़ते जा रहे थे पार्वती के घर की ओर।

हिन्दू-विवाह-प्रथा के अनुसार, एक खास जगह पर ही विवाह का मंडप बनाया जाता है। जैसे ही उस मंडप में बारात पहुंची, सबका रूप बदल गया। शिव अतिशय नवयुवक हो गये। उनके सभी साथी देवता बन गये। सबके शरीर में दिव्य वस्त्र, जगमगाते आभूषण और गले में सुगन्धित फूलमाला।

भारत में, विवाह के समय वर को अपना गोत्रादि बताना पड़ता है—पिता का नाम, पिता के पिता का नाम और फिर आगे सातों पीढ़ी का नाम। पूछने पर शिवजी ने अपना परिचय बताया—'न मेरी मां है, न बाप।' 'तब आप जन्मे कैसे?' 'मेरा जन्म कभी हुआ ही नहीं।' लेकिन आप तो आकर्षक युवक दिखते हैं!' मैं तो चिरयुवा हूं।' तो आपका घर कहां है?' 'जंगल में कहीं भी।' आपके कोई रिश्तेदार तो जरूर होंगे?' 'हां, सभी भूत, प्रेत, वेताल, पिशाच मेरे रिश्तेदार हैं—भय और क्रोध भी मेरे रिश्तेदार हैं—वे सब मेरे परिजन हैं।'

अब आखिर में पूछा गया—'हमारी बेटी रहेगी कहां?' अरे, कोई विशेष प्रबन्ध की जरूरत ही नहीं, वह मेरे शरीर का आधा अंग बनकर रहेगी।' उन्होंने उत्तर दिया। इसीलिए शिव न तो इन्सान हैं, न भगवान। वे हमारे दिव्य जीवन, उच्च चेतना के प्रतीक रूप हैं।

सभी ज्योतिर्लिंग हमारे अन्दर में ही हैं—शायद बारहों; लेकिन हम उन्हें देख नहीं पाते। सावधानी से योगाभ्यास करते हुए, त्रिकाया को पार करके हम उस शिव चेतना का आत्म साक्षात्कार कर सकते हैं। और तभी हम अपनी दिव्य चेतना के साथ तद्रूप हो सकते हैं—ठीक वैसे ही जैसे पार्वती शिवजी के साथ एकरूप हो गयीं।

तांत्रिक अभ्यास : वज्रोली एवं सहजोली

(तन्त्र शास्त्र में पुरुषों एवं महिलाओं को अपनी काम-शक्ति को ऊर्ध्वगामी बनाकर ब्रह्मशक्ति में परिवर्तित करने, कुण्डलिनी शक्ति जागृत कर चेतना का विस्तार करने एवं समाधि के उच्चतर आयामों की प्राप्ति के लिए दो अति शक्तिशाली क्रियायें— वज्रोली एवं सहजोली, बतलायी गई हैं। इन यौगिक क्रियाओं के संबंधों में अनेक भ्रांतियां एवं उटपटाँग साधनाएँ छिटपुट रूप से प्रचलित रही हैं। इन भ्रान्तियों में स्पष्ट रूप में समाधान कर उनकी सहज यौगिक प्रविधियों का दिग्दर्शन स्वामी सत्यानन्द जी के द्वारा दिये गये सत्संग से उद्धृत किया जा रहा है। इनका सरल अभ्यास सभी साधक लोग कर सकते हैं, किंतु हठयोग की इन क्रियाओं में रुचि रखने वाले उत्साही साधकों के लिए इनके उच्च अभ्यास में कुशलता प्राप्त करने के लिए किसी सिद्ध योगी अथवा तांत्रिक गुरु से प्रत्यक्ष सम्पर्क करना आवश्यक है अन्यथा इनके उच्च अभ्यास काल के सूक्ष्म प्रभावों को नियंत्रित करना, समझना और दिशान्तरित करना उनके लिए असम्भव भी हो सकता है।)

वज्रोली

तंत्र में वज्रोली की दो विधियाँ बतलायी गई हैं, एक है हठयोग की और दूसरी है क्रियायोग की। हठयोग की प्रक्रिया द्वारा वज्रोली मैथुन की ओर उन्मुख है एवं क्रिया-योग की विधि का सम्बन्ध चक्रों को जागृत करने से है। प्रथम विधि से परिणाम शीघ्र यानी एक-दो वर्षों में मिलते हैं, लेकिन दूसरी विधि से प्राप्त परिणाम अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण तथा शक्तिशाली होते हैं, यद्यपि इसकी पूर्णता प्राप्ति में चार-पांच वर्ष लग जाते हैं।

पारम्परिक हठयोग विधि में चांदी अथवा सोने की एक लचीली पाइप को मूल-नली के अन्दर डाला जाता है। इस विधि का प्रयोग वयःसन्धि के पूर्व करना चाहिए क्योंकि मूत्रमार्ग की दीवारें तब लचीली तथा मुलायम होती हैं और वीर्य पतन की सम्भावना भी कम होती है। इसमें मूत्रमार्ग की वक्रता के पास नली को मुड़ना नहीं चाहिए बल्कि मूत्रमार्ग (urethra) को प्रसारित करना चाहिए।

क्रियायोग की विधि में पूर्णता प्राप्ति तक प्रत्येक दिन दो बार सुबह-शाम दो वर्षों तक सिद्धासन में उड्डियान बन्ध का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। तथा साथ-साथ प्राणायाम का भी अभ्यास जारी रखना चाहिए। तब सिद्धासन में मूलबन्ध लगाये बिना ही मूलबन्ध हो जाता है, जबकि उड्डियान बन्ध का अभ्यास मूत्रमार्ग तथा उसके आस-पास के अंगों को शक्तिशाली बनाता है। इस हेतु उड्डियान बन्ध का अभ्यास कम से कम डेढ़ मिनट तक करने की क्षमता प्राप्त करना जरूरी है। तभी आगे कदम बढ़ाना सम्भव है। प्रारम्भिक अभ्यास के समय दूसरे चरण के अभ्यासों को करना वर्जित है।

उड्डियान बन्ध में दक्षता प्राप्ति के बाद उपयुक्त भोजन के द्वारा शरीर की अम्लीयता दूर करना भी आवश्यक है। इसके लिए भोजन में सतर्कता के अलावा पानी अधिक पीना आवश्यक है, ताकि पेशाब साफ तथा गंधहीन हो। अगर भोजन तथा जल दोनों अम्लीयता दूर करने में सक्षम न हों तो सूखी धनिया चबाना चाहिए। अम्लीयता मुक्ति की जाँच का सर्वोत्तम तरीका है—पेशाब करते समय पेशाब को थोड़े समय के लिए रोकना। अगर जलन का अनुभव हो, तो समझना चाहिए कि अम्लीयता अभी समाप्त नहीं हुई है।

जब अम्लीयता दूर हो जाये तथा सिद्धासन और उड्डियान बन्ध भी सिद्ध हो जायें, तब पेशाब करते समय पेशाब को रोकने का अभ्यास करना चाहिए। करीब एक चौथाई पेशाब जब शेष रहे, तब मूत्र के प्रवाह को रोक देना चाहिए और फिर संकुचन को मुक्त कर उसे बहने देना चाहिए। फिर रोकना चाहिए, इस तरह क्रिया चलती है।

इस तरह का अभ्यास करीब छः महीने तक करना चाहिए। इसे खड़े रहकर नहीं, नमस्कार की स्थिति में करना चाहिए।

जब मूत्र प्रवाह पर नियंत्रण प्राप्त हो जाए और अपनी इच्छा से आप उसे कभी भी रोक अथवा शुरू कर सकने की क्षमता प्राप्त कर लें तो मूत्र को फिर से वापस खींचने का अभ्यास करना चाहिए। यह बहुत कठिन है। इसको सिद्ध करने में एक-दो वर्ष लग जाते हैं। जितना मूत्र बाहर निकलता है, उसकी अपेक्षा बहुत ही कम मात्रा में मूत्र वास्तव में फिर ऊपर खीचा जा सकता है, लेकिन इसके खींचने का अनुभव स्पष्ट होता है।

जब मूत्र को ऊपर खींचना सम्भव हो जाता है, तब वीर्य को भी खींचा जा सकता है। अतः इसका अगला चरण है, स्खलित हो रहे वीर्य को ऊपर खींचना। इसे सिद्ध करने के लिए आवश्यक है कि वीर्य स्खलन की इच्छा, काल और वास्तविक वीर्य-स्खलन की अवधि के अन्तराल को बढ़ाया जाए। इस अन्तराल को धीरे-धीरे एक मिनट तक बढ़ाया जाए, अधिक नहीं। प्रारम्भ में लम्बे अन्तराल के कारण साधक अचेत हो सकता है, पर इसका अनुभव आश्चर्यजनक होता है। इस अनुभव के दौरान शरीर बिल्कुल अचल, आंखें बन्द तथा श्वास को अन्तर्कुम्भक या बहिर्कुम्भक की स्थिति में होना चाहिए। सम्पूर्ण एकाग्रता मात्र वीर्य को रोकने में ही रहती है।

इस तरह वीर्य को रोकने पर मूलाधार चक्र में बहुत ही स्पष्ट अनुभूति होती है जैसे कोई छोटी गोली से मूलाधार चक्र को पीट रहा हो। इस विधि में निपुण हो जाने के बाद मेरुदण्ड में स्थित अतीन्द्रिय केन्द्रों अर्थात् चक्रों पर एकाग्रता का अभ्यास किया जाता है।

वज्रोली का अभ्यास

सिद्धासन में बैठकर उड्डियान बन्ध को डेढ़ मिनट तक सिद्ध करो।
मूत्र की अम्लीयता को भोजन, पानी, धनिये के बीज से दूर करो।

नमस्कार की स्थिति में पेशाब को बीच में ही रोकने तथा शुरू करने का अभ्यास छः महीने तक करो।

दो वर्षों तक मूत्र को ऊपर खीचने का अभ्यास करो।

एक मिनट तक वीर्य को रोककर रखने का अभ्यास करो।

वीर्य को रोक कर रखने के समय को धीरे-धीरे बढ़ाते जाओ, जब तक वीर्य स्थायी रूप से न रुकने लगे।

सहजोली

सिद्धयोनि आसन में स्त्रियां सहजोली का अभ्यास करती हैं। अतः सर्वप्रथम आसन सिद्ध होना आवश्यक है। फिर इसका अभ्यास धीरे-धीरे इस क्रम में करना चाहिए—हाथ-पैर अच्छी तरह से साफ कर सिद्धयोनि आसन में बैठो।

योनि की मांसपेटियों को संकुचित करो, फिर ढीला छोड़ो। ऐसा कई बार करो।

जब योनि की मांसपेशियां शक्तिशाली हो जायें, तब योनि के आन्तरिक भाग को संकुचित करो तथा धीरे-धीरे उसे और संकुचित करो। योनि की सारी मांसपेटियों को संकुचित करते जाओ तथा इसे तब तक बढ़ाते जाओ जब तक मांसपेटियों को गहराई तक संकुचित न करने लगो।

इसमें अभ्यस्त होने के बाद योनि द्वार को एड़ी से ऊपर उठाकर योनि की मांसपेटियों को संकुचित करना शुरू करो।

उसके बाद योनि द्वार की मांसपेटियों को शिथिल करके नीचे करो ताकि एड़ी योनि के अन्दर प्रवेश कर जाए। इसे बार-बार अभ्यास करने पर एड़ी और अन्दर चली जाती है। इसका अभ्यास तब तक करो जब तक एड़ी योनि के अन्दर दो सेंटीमीटर तक प्रवेश न कर जाए। तब अन्तिम स्थिति में निपुण हो जाओ तब भद्रासन अथवा गोरक्षासन में बैठ जाओ।

अन्य विधि

मुट्ठियों को भींचकर भुजाओं को तानते हुए नौकासन करो। अभ्यास के दौरान अन्तर्कुम्भक लगाकर योनि को संकुचित करो। जब यह आसानी से होने लगे, तब योनि से प्रारंभ कर सम्पूर्ण शरीर का संकुंचन करो।

पैरों के बगल में बांहों को फैलाकर हाथों को समतल जमीन पर रखते हुए नौकासन की स्थिति में आओ। उसके बाद कुम्भक लगाकर शाम्भवी मुद्रा करते हुए योनि की सारी मांसपेटियों को जब तक सम्भव हो संकुचित करके रखो।

—०—

स्वरयोग

स्वामी पुरुषोत्तम सरस्वती

मनुष्य के अन्दर ऐसी अपूर्व शक्तियों का भण्डार है जिसको प्राप्त कर लेने पर वह स्वयं-सिद्ध होकर त्रिकाल दर्शक बन सकता है। किन्तु माया के बन्धन में पड़कर मनुष्य दिन-प्रतिदिन अपने उस दिव्य नेत्र से रहित होता जा रहा है, वह अपनी अन्तस्थ अमूल्य शक्ति-रत्नागार से अनभिज्ञ होता जा रहा है। यही कारण है कि वह कितने ही भौतिक साधनों के होते हुए भी रात-दिन दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से पीड़ित व क्लांत दिखता है। वह चाहता बहुत कुछ है पर कर कुछ भी नहीं पाता।

शास्त्रकारों का कहना है—'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' अर्थात् इस ब्रह्माण्ड क. एक रूप यह पिण्ड (शरीर) भी है। प्रकृति का स्वरूप दर्शन हमें पशु-पक्षी, लता-वृक्ष, फल-फूल, नदी-पर्वतादि के आधार पर हो जाता है और सामान्य मनुष्य को भी प्रकृति के बाह्य परिवर्तन का बोध समय, ऋतु आदि के द्वारा हो जाता है और सामान्य मनुष्य अपनी बुद्धि द्वारा और नाक्षत्रिक ग्रह-नक्षत्र आदि के माध्यम से भावी घटनाओं का समय से पूर्व ही ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसी प्रकार इस शरीर में किसी भी भावी घटना के पूर्व एक सूक्ष्म संकेत मिलता है, परन्तु अज्ञानवश वह उसको समझ नहीं पाता और दुःख शोकादि का शिकार बन जाता है। अतः इस दिव्यज्ञान को प्राप्त करने के लिये हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों ने अनेक साधन बतलाये हैं जिनमें से 'स्वरयोग' को एक उत्तम साधन माना गया है।

स्वरयोग भारत की अति प्राचीन और शिरोमणि विद्या है। इसके आश्चर्यजनक परिणाम और साधन की सरलता के कारण किसी समय इस विद्या का सम्पूर्ण भारत के जन-मानस पर बहुत अधिक प्रभाव था और सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी इसके ज्ञान से लाभ उठाते रहे। किन्तु भौतिकवाद के कुचक्र में आकर लोग इस परम-पावन विद्या को भूल से गये, अतः आधुनिक काल के आते तक यह रहस्यमयी विद्या कपोल-कल्पना ही रह गयी। इस महत् स्वरविज्ञान को आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर कसना बहुत जरूरी है, क्योंकि आज लोगों की अध्यात्म की ओर जाग रही अभिरुचि का इसके पास समाधान है। न केवल अध्यात्म में बल्कि इस विज्ञान के रहस्योद्घाटन से आधुनिक विज्ञान को भी बड़ी उपलब्धि होगी।

स्वर क्या है

योग में श्वास को स्वर कहा गया है। अर्थात् नासिका के दोनों छिद्रों से निरंतर श्वास और प्रश्वास के रूप में प्रवाहित होने वाली प्राण वायु को स्वर कहते हैं। वायु ग्रहण करने को निःश्वास या पूरक और वायु बाहर छोड़ने को प्रश्वास या रेचक कहते

हैं। अतः स्वर विद्या सीखने के लिए श्वास-प्रश्वास का ज्ञान आवश्यक है। कहा है —'काया नगरमध्येतु मारुतः क्षितिपालकः' अर्थात् इस देह रूपी नगर में वायु, राजा के समान है। प्राणी श्वास-प्रश्वास की क्रिया से प्राण शक्ति को प्राप्त करता है।

श्वसन क्रिया एक नैसर्गिक क्रिया है, जो मनुष्य के जन्म से लेकर मरण काल तक सहज रूप से चलती रहती है। नासिकाएँ खुली होने पर भी श्वास एक साथ नहीं चला करती। कभी दाहिनी तो कभी बायीं नासिका छिद्र में प्रति एक घंटे के अन्तर में परिवर्तित होती रहती है और परिवर्तन के समय यह कुछ क्षण के लिए दोनों नासिका छिद्रों में चलने लगती है। परन्तु इसका हमें स्थूल रूप से भान नहीं होता। श्वास का दोनों नासिकाओं में अलग-अलग बहना ही इस विज्ञान का महत्त्वपूर्ण पहलू है। स्वर के ज्ञान द्वारा हम शरीर स्वास्थ्य तो बना ही सकते हैं, साथ ही मन की वृत्तियों पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। इसके ज्ञान से हम अपने और सृष्टि के बीच घटने वाली रहस्यमयी घटनाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

योग की अन्य क्रियाओं के अनुसार स्वर विज्ञान भी मनुष्य को आत्मोन्नति के मार्ग पर ले जाने वाली विद्या है। कई बार मनुष्य मन की वृत्तियों के कारण उलझन में पड़ जाता है। उस समय वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है और इस द्वन्द्व में पड़ कर कोई निर्णय नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति पर स्वर-ज्ञान काम आता है। पति बीमार पड़ा है, मरणासन्न है और पत्नी को अपने मैके में पता चलता है। उस समय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार नाना प्रकार के यात्रा अरिष्ट बतलाये जाते हैं। बरबस वह शुभ लग्न की प्रतीक्षा में बैठी रह जाती है और तब तक पतिदेव का हरि ॐ तत्सत् (अन्त) हो जाता है। वह जीवन भर इस दारुण दुःख से पीड़ित रहती है। रोगी की मृत्यु सन्निकट होते हुए भी वैद्यराज शुभ मुहूर्त की ताक में औषध नहीं दे पाते और रोगी मर जाता है। समाज में यात्रा, वाणिज्य, विवाह, व्रत, गृहप्रवेशादि कर्म के समय भी मुहूर्त का विचार करना प्रचलित है। इन परिस्थितियों पर मनुष्य का पाक्षिक ज्ञान प्रायः असफल होता देखा जाता है। मनुष्य का किसी भी काम को सकुशल इच्छानुकूल करना जन्मसिद्ध अधिकार है, पर कतिपय सिद्धान्तों के आधार पर इच्छा होते हुए भी वह नहीं कर पाता। ऐसे अवसर पर मनुष्य अगर स्वर शास्त्र का ज्ञाता है, तो वह निश्चित ही निर्विघ्नतापूर्वक किसी भी कार्य को कर सकता है।

स्वरयोग का लक्ष्य

स्वरयोग एक स्वतंत्र शास्त्र है। यह किसी परिस्थिति, धर्म या सभ्यता से संबंधित नहीं है। इससे व्यक्ति के विश्वास, विचार एवं कार्यों में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती। स्वर ज्ञान के द्वारा व्यक्ति अपने अंधविश्वास व गलत मान्यताओं के बंधन से छुटकारा पा सकता है। शिव-स्वरोदय का मत है—

न तिथिर्न च नक्षत्रं न वारो ग्रहदेवता।
न च विष्टिव्यतीपातो वैधृत्याद्यास्तथैव च ॥

कुयोगो नास्ति नो देवि ! भविता वा कदाचन ।
प्राप्ते स्वरबले शुद्धे सर्वमेवशुभं फलम् ।।

अर्थात् स्वरोदय शास्त्रियों के लिए तिथि, नक्षत्र, वार, ग्रह, देवता विष्टि, व्यतीपात और वैधृति आदि से व्याघात उत्पन्न नहीं होते। हे देवि ! इसमें कुयोग कभी नहीं होता। स्वर बल को शुद्ध कर इसके अनुसार कर्म करने पर सर्वत्र शुभ ही होता है। अशुभ कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न कार्यों में समय, लग्न अथवा मुहूर्त की अनुकूलता न होते हुए भी स्वरयोग के माध्यम से सभी कार्य सकुशल सम्पादित किये जा सकते हैं। आगे स्वरोदय शास्त्र कहता है 'भवेत् ज्ञान त्रिकालजम्' इसको सिद्ध कर लेने पर मनुष्य त्रिकालदर्शी भी बन जाता है। यह स्वर ज्ञान अति सूक्ष्म एवं रहस्यमय विषय है। निर्बाध और सुखमय जीवनयापन करने के लिए यह सर्वोपयोगी साधना है और सत्यान्वेषी के लिये यह रहस्य की कुंजी है।

स्वरयोग का रहस्य

सृष्टि-रहस्य अद्भुत है। इस अनन्त ब्रह्माण्ड में प्रकृति ने आश्चर्यजनक रहस्यों को छिपा रखा है। इसके रहस्यों की खोज की जिज्ञासा मनुष्य में स्वाभाविक ही उठती है। आधुनिक आविष्कारों के पीछे मनुष्य की वह जिज्ञासा कारण है। सृष्टि का सबसे बड़ा रहस्यमय जीव है मानव स्वयं। इसके अन्दर ऐसी रहस्यमयी शक्तियाँ छिपी हुई है जिनके बारे में आज तक स्पष्टतः कुछ भी नहीं कहा जा सका है। हाँ अवश्य ही इन रहस्यों के बारे में अध्यात्म मार्ग पर चलने वाले योगी-महर्षियों ने पता लगाने का प्रयास किया, शास्त्रों में इसका प्रमाण है। शास्त्रों से पता चलता है कि उन्हें अपनी खोज में काफी सफलता भी मिली पर उनका ज्ञान अनुभवजन्य होने के कारण सर्वसुलभ नहीं हो पाया और रहस्य का रहस्य ही बना रहा। उनकी विद्या अनुभवी ज्ञानियों के लिए भी रहस्यमय बन गई।

स्वरयोग की महिमा

स्वरयोग मात्र एक श्वसन प्रणाली पर अधिकार प्राप्त कर त्रिकालज्ञ बनने का साधन ही नहीं बल्कि यह एक विशुद्ध वैज्ञानिक तत्त्वज्ञान भी है। यह बतलाता है कि निखिल विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त भौतिक शक्तियों से मनुष्य शरीर किस प्रकार प्रभावित होता है। सूर्य, चन्द्र तथा अन्यान्य ग्रह नक्षत्रों की चैतन्य रश्मियों द्वारा शरीर के परमाणुओं में किस प्रकार की चेतना उत्पन्न होती है। शरीर की जब जैसी स्थिति हो तब उससे वैसा ही काम लेना चाहिये—यही स्वरयोग का गूढ़ रहस्य है।

नाड़ी विज्ञान

'स्वरयोग की साधना करने वाले साधक के लिए नाड़ियों का ज्ञान एक महत्त्वपूर्ण विषय है। नाड़ी का अर्थ यहाँ स्नायु आदि से नहीं अपितु उन प्रवाहधाराओं से है जिन्हें प्राण का आवागमन-पथ कहते हैं। इस प्रकार मानव-शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं, किन्तु इसमें दस प्रमुख हैं और इन दसों में से तीन महत्त्वपूर्ण नाड़ियाँ हैं। इन

तीनों को इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कहते हैं।

बायीं नासिका से प्रवाहित होने वाली वायु को इड़ा नाड़ी या बायाँ स्वर और दाहिनी नासिका से प्रवाहित होने वाली को पिंगला नाड़ी या दाहिना स्वर कहते हैं। जिस प्रकार दिन और रात के मध्य में एक संधिकाल होता है उसी प्रकार इन दोनों के बीच में भी एक संधि समय आता है और उस समय दोनों नासिका से स्वर चलता है। इसे सुषुम्ना स्वर कहते हैं। इन तीनों के अतिरिक्त अन्य सात नाड़ियाँ हैं जिनको गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलंबुषा, कुहू और शंखिनी कहते हैं। इन सातों का स्थान है—हस्तिजिह्वा-दाहिनी आँख में। गांधारी—बायीं आँख में। पूषा—दाहिने कान में। यशस्विनी—बायें कान में। अलम्बुषा—मुख में। कुहू—लिंग देश में और शंखिनी गुदा में। इन नाड़ियों का आश्रय वायु है अतः साधक के लिए वायु विषयक जानकारी भी आवश्यक हो जाती है। जिस प्रकार शरीर में दस नाड़ियों को मुख्य माना गया है, उसी प्रकार शरीर में दस प्राण भी मुख्य माने गये हैं। जिनमें से भिन्न-भिन्न स्थान पर रहने वाले पाँच वायु मुख्य माने गये हैं। उनका नाम है प्राण, अपान, उदान, समान व व्यान। शरीर में इनकी स्थिति इस प्रकार—प्राण हृदय में, अपान गुदा में, समान नाभि देश में, उदान कंठभाग में; और व्यान को सर्व शरीर-व्यापी माना गया है। इनके अतिरिक्त पाँच नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय पांच उपवायु हैं। इनके द्वारा शरीर के विभिन्न कर्म जैसे—उद्गार, उन्मीलन, विजृम्भण, क्षुधा आदि कार्य सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार भलीभाँति दसों वायु एवं दश प्राण-वाहिनियों का ज्ञान हो जाने पर ही स्वरयोग साधना आरंभ करनी चाहिये।

पंचतत्त्व विवेचन

स्वरयोग साधक के लिए जिस प्रकार स्वरों का ज्ञान आवश्यक होता है उसी प्रकार पंचतत्त्व का ज्ञान भी आवश्यक है। क्योंकि मनुष्य का शरीर इन पंचतत्त्वों के ही सम्मिश्रण से बना है। इन्हीं को पंचमहाभूत की भी संज्ञा दी गई है। इनको सिद्ध कर लेने के पश्चात् मनुष्य को भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों का ज्ञान हो जाता है और इस प्रकार वह अनेकानेक सिद्धियों को प्राप्त करता है।

तत्त्व साधन

तत्त्व क्या है? तत्त्व का अर्थ होता है सार भाग या मूलवस्तु। आध्यात्मिक विज्ञान में तत्त्व का उपयोग वहाँ होता है जहाँ आत्मा और ईश्वर के समन्वय की चर्चा होती है। भौतिक शास्त्री प्रकृति के मूल-भूत कारणों को तत्त्व कहते हैं। ऐसे ही स्वरयोग में शरीरगत पंच तत्त्वों पर अधिकार प्राप्त कर लेने वाले योगी को भी तत्त्वज्ञानी कहते हैं। ये तत्त्व पाँच हैं—

'पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च'

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। षट् चक्र भेदन की भाँति स्वरयोग में इनकी भी उपासना की जाती है।

ब्राह्म मुहूर्त में किसी पवित्र स्थान पर शान्तचित्त होकर सिद्धासन या पद्मासन में बैठ जाइये। दोनों हाथों को घुटनों पर ज्ञानमुद्रा में रखिये। अब नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखते हुये मूलाधार चक्र पर 'लं' बीज वाले चौकोर, पीले रंग के पृथ्वी तत्त्व का ध्यान कीजिये कुछ दिन इस प्रकार करने पर आपको नासाग्र पर अत्यन्त सुगंध का अनुभव होगा और शरीर देदीप्यमान दिखने लगेगा। इसी तरह निरंतर करते रहने पर यह तत्त्व सिद्ध हो जायगा और आप जिस किसी समय इस तत्त्व को चालित करना चाहें चालित कर सकेंगे। इसके द्वारा प्रत्येक शुभाशुभ का विवेचन किया जा सकता है।

उपरोक्त विधि से अन्य चारों तत्त्वों का ध्यान करें।

'वं' बीज वाले, अर्ध चन्द्राकार श्वेत वर्ण वाले स्वाधिष्ठान चक्र पर जल तत्त्व का ध्यान करें इससे भूख-प्यास पर विजय एवं सहनशक्ति प्राप्त होती है।

'रं' बीज वाले त्रिकोणाकार अग्नि के रंग वाले मणिपूर चक्र में अग्नितत्त्व का ध्यान करें। इससे धूप व अग्नि आदि सहने की शक्ति आती है।

'यं' बीज वाले गोलाकार हरित रंग के अनाहत (हृदय) चक्र में वायुतत्त्व का ध्यान करें इससे आकाश गमन की सिद्धि मिलती है।

'हं' बीज एवं बैंगनी रंग वाले विशुद्धि चक्र में आकाश तस्व का ध्यान करने से त्रिकाल ज्ञान, ऐश्वर्य और अणिमादि अष्ट-सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसी रीति से प्रतिदिन इन तत्वों का ध्यान करते रहने से कालान्तर में ये तत्त्व सिद्ध हो जाते हैं। तब इन्हें सरलता से पहचाना जा सकता है। यहाँ हम संक्षेप में कुछ विधियाँ लिख रहे हैं जिनसे आपको तत्त्व पहचानने में सहायता मिलेगी।

गति द्वारा

तत्त्वों के उदय के साथ प्रवाहित स्वर की गति भी बदलती है। यदि नासिका के बीच में स्वर चल रही हो तो पृथ्वी तत्त्व, नीचे की ओर चल रही हो तो जल तत्त्व, ऊपर की ओर चल रही हो तो अग्नि तत्त्व, तिरछी चल रही हो तो वायु तत्त्व, और घूमती हुई चल रही हो तो आकाश तत्त्व समझना चाहिये।

लम्बाई द्वारा

थोड़ी-सी धुनी हुयी रुई लेकर हथेली पर रखिये और स्थिर आसन में बैठकर (श्वास जैसी चल रही हो चलने दें) धीरे-धीरे नथुने की ओर रुई वाले हाथ को बढ़ाइये जितनी दूरी पर श्वास के द्वारा रुई में थोड़ी भी हलचल हुई हाथ को रोक लीजिये और किसी चीज के सहारे उसकी दूरी को अंगुलियों के सहारे नाप लीजियें। १२ अंगुल चल रही हो तो पृथ्वी तत्त्व, १६ अंगुल हो तो जल तत्त्व, १४ अंगुल हो तो अग्नि तत्त्व, १८ अंगुल हो तो वायुतत्त्व और २० अंगुल हो तो आकाश तत्व का उदय जानिये।

स्वाद द्वारा

बिना कुछ खाये भी यदि आप ध्यान दें तो विशेष स्वाद की अनुभूति होगी। आप ध्यान से उसका परीक्षण कीजिये। मुख का स्वाद मीठा हो तो पृथ्वी तत्त्व, कसैला हो तो जल तत्त्व, कड़ुआ हो तो अग्नि तत्त्व, खट्टा हो तो वायुतत्त्व और तीखा हो तो आकाश तत्त्व समझना चाहिये।

समय द्वारा

स्वाभाविक रूप से स्वर एक घंटा चलता है जिसमें २० मिनट पृथ्वी तत्त्व, जल तत्त्व-१६, अग्नि तत्त्व-१२, वायुतत्त्व-८ और आकाश तत्त्व-४ मिनट चलता है।

आकृति द्वारा

एक स्वच्छ दर्पण लीजिये और उस पर जोर से नाक द्वारा श्वास छोड़िये। इससे श्वास की भाप से दर्पण के ऊपर एक आकृति बन जायगी जिसको देखकर आप स्वर पहचान सकते हैं। आकृति चौकोर हो तो पृथ्वी तत्व, अर्धचंद्राकार हो तो जलतत्त्व, त्रिकोण बने तो अग्नि तत्त्व, अण्डाकार बने तो वायु तत्त्व और छोटी-छोटी बिन्दियों के रूप में हो तो आकाश तत्त्व समझना चाहिये।

षण्मुखी मुद्रा द्वारा

किसी ध्यान के आसन में बैठकर दोनों कानों को अंगुठों से, दोनों आंखों को तर्जनियों से, नासिकाओं को मध्यमाओं से, ऊपर के होंठ को दोनों अनामिका, एवं निचले होठ को दोनों कनिष्ठिका से बंदकर और ध्यान से आप अपने अंदर के दृश्य को देखिये। ऐसी स्थिति में कुछ आकृतियाँ आपके सामने दिखेंगी। आप उसके रंग एवं आकार को देखकर भी तत्वों को जान सकते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश का क्रमशः पीला-चतुष्कोण, श्वेत-अर्धचन्द्राकार, लाल-त्रिकोण, धूम्र-षट्कोण, चित्र-विचित्र-बिन्दु के रंग और आकार होते हैं।

इसके अतिरिक्त एक और प्रक्रिया है जिससे सहज ही तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। पाँचों तत्त्वों के रंग की किसी भी वस्तु की पाँच गोलियाँ बना लें और उन्हें जेब में रख लें। जब तत्त्व-परीक्षा करनी हो जेब में हाथ डालकर एक गोली निकाल लें फिर रंग देखकर तत्त्व का ज्ञान कर लें तत्त्वों का ज्ञान हो जाने पर किसी भी शुभ-अशुभ लाभ-हानि, कर्तव्याकर्तव्य-विषयक प्रश्नों का समाधान किया जा सकता है।

स्वर-साधन

तत्त्वों की पहचान हो जाने पर स्वर साधन करने में सरलता होती है। स्वर साधन में सबसे पहिले स्वरों की प्राकृतिक स्थिति का ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि जिस प्रकार समुद्र की लहर पर चन्द्र-सूर्य का प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार स्वरों से भी चन्द्र-सूर्य का संबंध होता है। अतः प्रत्येक पक्ष में श्वास की गति भिन्न-भिन्न होती है और प्रायः एक नासिका से १ घंटा चलकर श्वास बदल जाती है। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को प्रातः इड़ा नाड़ी अर्थात् बायाँ (चन्द्र) स्वर चलना चाहिये। उसी प्रकार

कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को प्रातः पिंगला नाड़ी अर्थात् दाहिना (सूर्य) स्वर चलना चाहिये। इसी तरह नियमपूर्वक श्वास चल रही है तो यह शरीरिक एवं मानसिक स्थिति के संतुलित होने का प्रमाण है।

इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि लगातार पन्द्रह दिन तक एक ही स्वर चलेगा। जिस प्रकार प्रतिपक्ष चंद्र की कलाओं में परिवर्तन होता है उसी प्रकार स्वर भी परिवर्तित होते हैं। प्रतिपदा को नाड़ी का आरंभ होकर प्रतिदिन सूर्योदयोपरांत स्वर बदलता है। जैसे शुक्लपक्ष का—१-२-३, ७-८-९, १३-१४ और पूर्णिमा को सूर्योदय के समय इड़ा नाड़ी (बायाँ स्वर) रहेगी और अन्य ४-५-६, १०-११-१२, को पिंगला नाड़ी (दाहिना स्वर) रहेगी। इसी प्रकार कृष्णपक्ष में पिंगला से शुरू होकर प्रति तीन दिन बाद स्वर बदलता है। यह नैसर्गिक नियम है।

स्वर साधन करने वाले साधक को स्वर पर पूर्णतः अधिकार प्राप्त करने तक यह साधना करनी चाहिये और यही स्वरयोग की सिद्धि है। इस अवस्था में साधक चलते-फिरते स्वरों में परिवर्तन कर सकता है। फिर भी उसे ऊपर बताये गये नियमों का ज्ञान होना परमावश्यक है। क्योंकि प्रकृति एक रहस्यमयी शक्ति है उसके नियमों का पालन कर अगर मनुष्य उससे कुछ चाहे तो वह सर्वस्व दे सकती है। पर उसके साथ खिलवाड़ करना उसके नियमों और सिद्धान्तों का उल्लंघन करना मनुष्य के लिए अभिशाप हो सकता है।

१. आप अगर प्राणायाम के अभ्यासी हैं तो आपको रेचक और पूरक आता होगा। जब आपको स्वर परिवर्तन करना हो उस समय पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठ जाइये और शरीर को स्थिर कर लीजिये नाड़ीशोधन प्राणायाम की रीति से श्वास चल रही हो उसी से धीरे-धीरे पूरक कीजिये और दूसरी नासिका से उसे छोड़िये। इस प्रकार कई बार लगातार करने पर स्वर परिवर्तित हो जावेगा।
२. जिस नासिका से श्वास चल रही हो उसी करवट पर लेट जावें तो स्वर बदल जावेगा, इस अवस्था में तकिये का सहारा लिया जा सकता है। तकिये को छाती के नीचे रख लीजिये, इससे एक फेफड़े पर दबाव पड़ने पर दूसरा फेफड़ा कार्य करने लगता है।
३. आप लोगों ने देखा होगा भगवान शंकर के चित्र में एक विशेष दण्ड को दिखाया जाता है। योगियों के पास भी यह दण्ड देखने को मिलेगा—इसे योगदण्ड कहते हैं। यह स्वर-योग का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। जिस नासिका में श्वास चल रही हो उस ओर की आँख (बगल) में इस दण्ड को दबाकर उसी ओर का थोड़ा-सा सहारा लेने से कुछ ही मिनट बाद स्वर परिवर्तित हो जाता है।
४. चलित स्वर में स्वच्छ रुई का फोहा रखने से भी स्वर बदल जाता है।
५. ध्यान द्वारा स्वर परिवर्तन करने के लिए चित्त की एकाग्रता एवं दृढ़ इच्छाशक्ति की जरूरत है। किसी भी ध्यान के आसन में बैठकर जिस स्वर को चलाना हो उस पर ध्यान एकाग्र कीजिये। कुछ समय पश्चात् निश्चित ही स्वर बदल जावेगा।

६. जब दीर्घ काल तक एक ही स्वर को चलाना हो एवं दूसरे स्वर को बंद करने की आवश्यकता हो तब यह प्रयोग किया जा सकता है। एक नथुने में ठीक आ सकने योग्य साफ रुई की एक गोली बनावें और जरा से स्वच्छ कपड़े में उसको रख कर सी दें जिससे उसके रेशे इधर-उधर न निकले रहें। जिस नथुने में श्वास चल रही हो उसमें इसको रख दें, थोड़ी देर में स्वर-परिवर्तित हो जायेगा तब इसको निकाल कर फेंक देना चाहिये, क्योंकि इसमें गंदगी हो जाती है, इसलिए दूसरी बार के लिए ठीक नहीं। ध्यान रहे मस्तिष्क के रोगी यह प्रयोग न करें।

७. इस विधि में किसी भी ध्यानासन में बैठकर चलित स्वर वाले नासिका छिद्र को अंगुली से बन्द कर नासिकाग्र दृष्टि का अभ्यास करें। इससे पांच मिनट में स्वर परिवर्तन होता है और इसी विधि के साथ बायें हाथ से दाहिनी बगल और दाहिने हाथ से बायीं बगल पर जोर देकर दबाने से सुषुम्ना स्वर चलता है अर्थात् दोनों स्वर खुल जाते हैं जो ध्यानाभ्यास के लिए उपयोगी होता है।

८. स्वर परिवर्तन के समय घी खाने से बायाँ और शहद खाने से दाहिना स्वर का चलना कहा गया है।

९. खेचरीमुद्रा और नौलिक्रिया से भी स्वर-परिवर्तन होता है।

१०. सीधे बैठ जाइये। फिर बायें घुटने को मोड़कर खड़ा कर बायीं छाती से लगा दीजिये। अब बायीं बगल (काँख) को बायें घुटने पर रख कर बायें तरफ सिर झुकाकर बैठ जाइये। कुछ ही मिनटों में आपका दायाँ स्वर चलने लगेगा और ठीक यही क्रिया दाहिने अंग से करने पर दायाँ स्वर चलने लगेगा।

११. केवल तीन दिन तक गोमूत्र में फुलाकर शुद्ध किये कुचला चूर्ण को तीन से छः रत्ती की मात्रा में चीनी मिलाकर फाँककर ऊपर से घृत मिश्रित गाय का दूध पीने से बायें स्वर को दाहिने स्वर में बदला जा सकता है। कुचले के प्रभाव रहते तक दक्षिण स्वर ही चलता रहेगा। [ध्यान रहे कि कुचला विष है, अतः पूर्णतया शुद्ध किये बिना इसका प्रयोग कभी न करें।]

स्वर परिवर्तन के उपरोक्त ग्यारह प्रयोग आपके सामन हैं। इनमें से अनुकूलता के आधार पर साधक अपने लिए एक चुन कर उसका अभ्यास कर सकते हैं—किन्तु अभ्यासी को सर्वप्रथम किसी स्वरयोग विशेषज्ञ से सलाह लेकर ही इसकी साधना करनी चाहिये। क्योंकि अनुभवजन्य-ज्ञान, अध्ययनजन्य-ज्ञान और कल्पनाजन्य-ज्ञान में बहुत अन्तर होता है। जो अनुभवी है वह उचित प्रयोग बतला सकता है। इसी अनुभवी शिक्षक का नाम है गुरु। किसी भी साधना में गुरु का अपना वैशिष्ट्य है। वह आपको मार्ग की वाधाओं से बचने का उपाय बतला सकता है। फिर गुरु-कृपा हो जाय तो साधक निर्बाध गति से सफलता को प्राप्त होता है।

स्वर साधन के अनुभूत प्रयोग

यात्रा का शुभारंभ स्वर परीक्षा के उपरांत ही करना श्रेयस्कर है। यद्यपि स्वरशास्त्र में उसका विस्तृत वर्णन किया गया है तथापि हम यहाँ संक्षेप में लिख रहे

हैं। जिस नासिका से स्वर प्रवाहित हो रही हो उस पैर को पहिले बढ़ाकर यात्रा आरंभ करें। इससे शुभ फल होता है। पर पाठकों को इतना और ध्यान में रखना होगा कि बायें स्वर के समय पूर्व और उत्तर दिशा की तथा दाहिने स्वर के समय पश्चिम और दक्षिण दिशा की यात्रा न करें। इससे अनिष्ट की आशंका हो सकती है, ऐसा शास्त्रों में निर्देश है। स्थिर कर्म में सूर्यस्वर से यात्रा का शुभारंभ करें।

प्रस्थानकाल में चलित स्वर के शरीर भाग को हाथ से स्पर्श कर चलित स्वर वाले कदम को आगे बढ़ा कर यदि चन्द्र स्वर चल रहा हो तो चार बार और सूर्य स्वर हो तो पाँच बार उसी पैर को जमीन पर पटक कर प्रस्थान करना चाहिये। किन्तु यदि क्रोधी या किसी ऐसे व्यक्ति के पास आप जा रहे हों जिसका स्वभाव उग्र है तब जो स्वर बंद है अर्थात् जो नहीं चल रहा है उस पैर को आगे बढ़ा कर यात्रारंभ करना चाहिये। एवं उसके पास जाकर इस प्रकार बैठना चाहिये कि वह व्यक्ति आपके अचलित स्वर भाग में हो। इस प्रकार उसकी उग्रता नम्रता में परिवर्तित हो जायेगी और आपका कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो जायेगा। गुरु, मित्र, अफसर और राज दरबार में जब वाम स्वर चालित हो उस समय वार्तालाप का आरंभ करना ठीक होगा।

१. सुबह बिस्तर पर आँख खुलते ही जिस ओर का स्वर चल रहा हो उसी ओर का पैर प्रथम जमीन पर रखने से सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। इससे भाग्योदय होता है।
२. परिश्रम से उत्पन्न थकावट को दूर करने के लिए या धूप की गर्मी से शांति पाने के लिए थोड़ी देर तक दाहिने करवट पर लेटने से फायदा होता है और थकावट या गर्मी दूर हो जाती है।
३. रोज आधा घंटा पद्मासन में बैठकर दाँतों की जड़ में जीभ का अग्रभाग जमाये रखने से कोई भी रोग नहीं होता और स्वास्थ्य उत्तम बना रहता है।
४. रोज आधा घंटा सिद्धासन में बैठकर नाभि पर दृष्टि जमाने से दृष्टि शक्तिशाली होती है, एकाग्रता बढ़ती है और स्मरण शक्ति तीव्र होती है। इस अभ्यास को लगातार छः माह तक करने से भयंकर स्वप्नदोष भी नष्ट हो जाता है।
५. जो दिन में बायीं नासिका से और रात में दाहिनी नासिका से श्वास लेता है उसके शरीर में कोई पीड़ा नहीं होती, मन सदैव प्रसन्न रहता है तथा दीर्घजीवी होता है। योगियों ने स्वर चालन की इस प्रक्रिया को सर्वोत्तम बताया है। साधना प्रकरण में बताये गये नियमों के आधार पर इसकी साधना की जा सकती है।
६. प्रतिदिन एकाग्र चित्त होकर श्वेत (सफेद) कृष्ण (काला) और रक्त (लाल) रंगों का ध्यान करने से शरीर के सभी विकार नष्ट होते हैं। इसमें आप अपनी इष्ट देवता के रंग का भी ध्यान कर सकते हैं।
७. सुख, स्वास्थ्य और जवानी को बनाये रखने के लिए इच्छानुसार स्वर परिवर्तन करने का अभ्यास नितांत आवश्यक है। दिन में जब भी समय मिले चलित स्वर को बदल देना चाहिये। इस प्रकार दिन में कई बार स्वर को बदलते रहने से चिर-

यौवन प्राप्त होता है। विपरीत करणी मुद्रा के साथ यह अभ्यास बहुत ही लाभदायक होता है।

८. प्राण वायु की बाहर की गति को असली परिमाण में रखने से आयु बढ़ती है। लेकिन बंधें हुये नियम से श्वास का दूर जाना हानिकारक होता है। अतः बारह अंगुल से जितना हो सके श्वास को घटाने का प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकार करने से मनुष्य दीर्घजीवी होता है।

९. बज्रोली मुद्रा सिद्ध कर अथवा अश्विनीमुद्रा, मूलबंध और उड्डियान बंध साध कर वीर्य तथा प्राण को उर्ध्वगामी करना चाहिये। प्राण एवं वीर्य की सतत् रक्षा करने से चिर-यौवन एवं अमरत्व की प्राप्ति होती है। इस अभ्यास के लिए गुरु का निर्देशन आवश्यक होता है।

रोगों में स्वर प्रयोग

१. बुखार—जब शरीर में बुखार आने की संभावना का संकेत मिले तो आप जो स्वर चल रहा हो उसे जब तक शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ प्रतीत न हो तब तक बन्द कर दीजिये। रुई की गोली से आप जिस स्वर को जब तक चाहें चला सकते हैं व ऐसा करने से बुखार में जल्दी आराम होता है।

२. सिरदर्द मालूम होते ही पेट के बल औंधे लेटकर दोनों हाथों और पैर को नीचे की ओर लम्बा फैला दें फिर किसी से दोनों हाथों की केहुनियों को रस्सी से बंधवा लें। ऐसा करने से ५-७ मिनट में तमाम दर्द छूट जायेगा। दर्द मिटने पर रस्सी खोल दें। सिरदर्द में नासिका द्वारा जल खींचने पर भी फायदा होता है।

३. बदहजमी—जिन्हें बदहजमी रहती हो उन्हें चाहिये कि वे सदा दाहिने स्वर की उपस्थिति में ही भोजन करें। इस प्रकार करने से अजीर्ण दूर होकर पाचन क्रिया तीव्र होती है। भोजन के पश्चात् १०० कदम चलकर पेशाब करें और आकर १५-२० मिनट बायीं करवट लेटे रहने से भी विशेष लाभ होता है। पद्मासन में बैठकर नाभि पर ध्यान करने से भी अपचन दूर होता है।

४. दाँत दर्द—जिनके दांत हिलते रहते हों या दुखते रहते हों उन्हें चाहिये कि वे शौच तथा पेशाब के समय अपने दाँतों को जोर से दबाये रखें। इससे दाँतों की शिकायत दूर होती है।

५. अन्य दर्द—छाती, पीठ, कमर, पेट आदि किसी भी अंग में एकाएक दर्द उठने पर जो स्वर चलता हो उसे सहसा पूर्ण बन्द कर देने से कैसा भी दर्द होगा पूर्ण शान्त हो जायेगा।

६. दमा—जब दमें का दौरा शुरू होने लगे और श्वास फूलने लगे तब जो स्वर चल रहा हो उसे एकदम बन्द कर दें। इससे १०-१५ मिनट में ही आराम होता हुआ नजर आयेगा। इस रोग का जड़ से नाश करने के लिए लगातार एक मास तक चलित स्वर को बन्द करके दूसरा चलाने का अभ्यास जितना ज्यादा हो सके करना चाहिए। ऐसा करने से दमा नष्ट हो जाता है। इस प्रकार जितना भी स्वर परिवर्तन का अभ्यास किया जायेगा उतना ही लाभ होगा।